कल्याण



अर्जुन और श्रीकृष्ण





भगवान् सूर्य

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



आख्यानकानि भुवि यानि कथाश्च या या यद्यत्प्रमेयमुचितं परिपेलवं वा। दुष्टान्तदुष्टिकथनेन तदेति साधो प्राकाश्यमाशु भुवनं सितरश्मिनेव॥

वर्ष ९४

गोरखपुर, सौर पौष, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, दिसम्बर २०२० ई०

पूर्ण संख्या ११२९

भगवान् श्रीसूर्यके स्वरूपका ध्यान

भास्वद्रत्नाढ्यमौलिः स्फुरद्धररुचा रञ्जितश्चारुकेशो भास्वान् यो दिव्यतेजाः करकमलयुतः स्वर्णवर्णः प्रभाभिः। विश्वाकाशावकाशे ग्रहगणसहितो भाति यश्चोदयाद्रौ

सर्वानन्दप्रदाता हरिहरनिमतः पातु मां विश्वचक्षुः॥ 'उत्तम रत्नोंसे जटित मुकुट जिनके मस्तककी शोभा बढा रहे हैं, जो चमकते हुए अधर-

ओष्ठकी कान्तिसे शोभित हैं, जिनके सुन्दर केश हैं, जो भास्वान् अलौकिक तेजसे युक्त हैं, जिनके हाथोंमें कमल हैं, जो प्रभाके द्वारा स्वर्णवर्ण हैं एवं ग्रहवृन्दके सिहत आकाशदेशमें उदयगिरि— उदयाचल पर्वतपर शोभा पाते हैं, जिनसे समस्त जीवलोक आनन्द प्राप्त करते हैं, हिर और हरके

द्वारा जो निमत हैं, ऐसे विश्वचक्षु भगवान् सूर्यनारायण मेरी रक्षा करें।'

राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।। (संस्करण २,००,०००) कल्याण, सौर पौष, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, दिसम्बर २०२० ई० विषय-सूची पृष्ठ-संख्या पुष्ठ-संख्या विषय विषय १- 'भगवान् श्रीसूर्यके स्वरूपका ध्यान'...... ३ १७- विश्वासी भक्त (श्रीयुत पं० श्रीनाथजी दुबे)२८ १८- महापुरुषोंके प्रति उद्दण्डताका दुष्परिणाम **[बोध-कथा]** ३० २– कल्याण......५ ३- गीताज्ञानका पुनर्स्मरण [आवरणचित्र-परिचय] ६ १९- ग्वालियरका शनिधाम—शनिश्चरा [**तीर्थ-दर्शन**] ३१ . २०- भक्तकवि श्रीकृष्णदयार्णवजी **[सन्त-चरित**]...... ३३ ४- श्रीगीताजयन्ती और गीताकी महिमा २१- विलक्षण क्षमा **[प्रेरक-प्रसंग**] ३४ (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ७ ५- स्वच्छ वस्त्रोंका आध्यात्मिक प्रभाव (आचार्य डॉ॰ २२- विवेक, विश्वास और प्रेम (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ३५ श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम० ए०, पी०-एच० डी०) ९ २३- 'पांचजन्य लो हाथमें' ६ - सबमें भगवान (पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम') ३६ (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ... १० ७- धन और भागवत-जीवन (श्रीमधुसुदनजी वाजपेयी)........११ २४- गोमाताकी सेवासे पुनरुत्थान [गो-चिन्तन] ३७ ८- मृक्ति स्वत: हो रही है [साधकोंके प्रति] २५- साधनोपयोगी पत्र (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)१४ १-भगवान् अकारण करुण हैं................. ३८ २-विविध प्रश्नोत्तर...... ३९ ९- भोग और प्रसाद २६ - व्रतोत्सव-पर्व [माघमासके व्रत-पर्व].....४० (आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')१७ २७- व्रतोत्सव-पर्व [फाल्गुनमासके व्रत-पर्व]४१ १०- 'अवसि चलिअ बन' (श्रीसंजीवकुमारजी भारद्वाज, बी०काम०, एल-एल०बी०) १८ २८- कृपानुभृति मार्गदर्शक४२ ११- अंग्रेजीके कवियोंपर गीताका प्रभाव (डॉ॰ श्रीरामशंकरजी द्विवेदी)......२० २९- पढ़ो, समझो और करो १-कृष्णभक्तोंकी सेवा भी कृष्णभक्ति है४३ १२- प्रलय नहीं, लयके देवता हैं भैरवजी (श्रीसलिलजी पाण्डेय).. २२ . २-हिंसक प्राणीके प्रति भी करुणा रखना ही मनुष्यता है ४५ १३– सनत्कुमारकथित श्रीकालभैरवाष्टकम्......२३ १४- श्रीमद्भगवद्गीताका कर्मयोग (श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला).... २४ ३०- मनन करने योग्य जुआ अनर्थकी जड़ है.....४६ १५- संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पुज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे २६ ३१ - निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक १६- जीव क्या है और माया क्या है? (श्रीरणविजयसिंहजी) २७ विषय-सची.....४७ चित्र-सूची १- अर्जुन और श्रीकृष्ण आवरण-पृष्ठ २- भगवान् सूर्य मुख-पृष्ठ ३- अर्जुन और श्रीकृष्ण (इकरंगा) ६ ४- गीताका उपदेश..... (" ५- द्युतक्रीड़ा..... (जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥ जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥ एकवर्षीय शल्क पंचवर्षीय शल्क विराट् जय जगत्पते। गौरीपति रमापते ॥ ₹ २५० ₹ १२५० वार्षिक US\$ 50 (' 3,000) विदेशमें Air Mail) (Us Cheque Collection पंचवर्षीय US\$ 250 (' 15,000) Charges 6\$ Extra संस्थापक - ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सम्पादक - राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक - डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़ केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

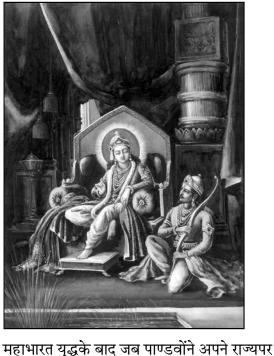
e-mail: kalyan@gitapress.org © 09235400242 / 244 website: gitapress.org

सदस्यता-शुल्क —व्यवस्थापक — 'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस — २७३००५, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर Kalyan या Kalyan Subscription option पर click करें। अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा book.gitapress.org पर नि:शुल्क पहें। संख्या १२] कल्याण याद रखो—मानव-जीवन बहुत बड़े उच्च कार्यकी और नित्यकर्म आदिकी व्यवस्था थी। सिद्धिके लिये है और वह काम सफल हो भी सकता याद रखो-प्रह्लाद, ध्रुव बालक ही थे, जो बालकपनमें ही भगवानुकी कुपाको पाकर धन्य हो है केवल मानव-जीवनमें ही। वह कार्य है—मुक्ति या गये थे। आज भी उनका नाम लेकर और उनके भगवत्प्राप्ति। उसके लिये प्रयत्न न करके दूसरे-दूसरे कार्योंमें लगे रहना ही मानव-जीवनका प्रमाद है। इस जीवनकी विश्वासभरी बातोंको पढ-सुनकर सभी लोग प्रमादमें कभी नहीं पड़ना चाहिये। पवित्र होते हैं। याद रखो-इसी 'मुक्ति' या भगवत्प्राप्तिके लिये याद रखो — जीवनको भगवानुकी ओर लगानेके ही यह जीवन मिला है। इसलिये 'बालक-अवस्था' से लिये दुर्गुण, दुराचार, दुर्विचार, दुःसंगका त्याग करके ही इसे लक्ष्य बनाकर जीवनका निर्माण करना है। यह सदुगुण, सदाचार, सद्विचार और सत्संगका सेवन करनेकी मानना मूर्खता है कि यह काम 'वृद्धावस्था' का है। नितान्त और अत्यन्त आवश्यकता है। श्रद्धा, विश्वास, कौन जानता है कि वृद्धावस्था आयेगी या नहीं? कौन आज्ञानुवर्तिता, अनुशासन, नियमित जीवन, संयम, सादगी, कह सकता है बालकपनमें ही मृत्यू नहीं आ जायगी? इन्द्रियनिग्रह आदि इस मार्गके प्रधान सहायक हैं। इसलिये घरवालोंको तथा समझदार बालकोंको शुरूसे इनका सेवन श्रद्धापूर्वक बालक-अवस्थासे ही करना ही ऐसा वातावरण बनाना तथा आचरण करना चाहिये, शुरू कर दो। जिससे शिश्-अवस्थामें ही इस मार्गके संस्कार बनें याद रखो—माता-पिताके चरणोंमें नमस्कार, और बढें। उनकी सेवा तथा उन्हें सुख पहुँचानेका पूरा प्रयत्न, याद रखो-मदालसा मैयाने लोरीमें ही अपने गुरुका सम्मान तथा उनकी आज्ञाका पालन, प्रतिदिन बच्चोंको ब्रह्मोपदेश किया था. प्रह्लादकी माता अपने अधिकारानुसार तथा भावानुसार नियमित भजन, कयाध्देवीने गर्भावस्थामें ही नारदजीके द्वारा अपने प्रार्थना, संध्या, जप, नियमित स्वाध्याय, सेवा तथा गर्भस्थ शिश् प्रह्लादको भगवद्भक्तिकी शिक्षा सुलभ दु:खपीडित नर-नारियोंकी सेवासे इस मार्गमें बडा कर दी थी। घर-घरमें कथा-पुराणके प्रसंग, माता-लाभ होता है। इतना ही नहीं, इससे इस लोकमें पिता तथा दादी-नानीके द्वारा रामायण-महाभारतकी भी सुख, ऐश्वर्य, आरोग्य, विद्या, यश, शक्ति और कहानियाँ बालकोंको इसीलिये सुनायी जाती थीं। उठते, गौरवकी प्राप्ति होती है। नहाते, खाते, जम्हाई लेते, छींकते, पढाई आरम्भ याद रखो-भगवानुको पानेके लिये विषय-करते, यात्रा आरम्भ करते, किसीसे मिलते, किसीको वैराग्य और ईश्वर-भजन अवश्य-अवश्य होना चाहिये। इसके लिये पूर्ण प्रयत्न करो। सदा सावधानीसे पत्र लिखते, सोते, मृत्युके समय तथा मरनेके बाद शवको श्मशान ले जाते समय विविध रूपोंमें इसीलिये सचेष्ट रहो। भगवानुका नाम लेने, लिखने, उच्चारण करने आदिकी याद रखो-धन, विद्या, बल, पौरुष, बुद्धिमत्ता प्रथा थी, जिससे घरके वातावरणमें भगवानुके साथ और महत्ताकी सफलता इसीमें है कि इन सबका प्रयोग. सम्पर्क बना रहे और बालकपर उसका प्रभाव पडे। उपयोग भगवत्प्राप्तिके लिये हो। नहीं तो, ये सभी व्यर्थ हैं, और हैं नरकाग्निमें ढकेलनेवाले। 'शिव' और इसीलिये संस्कार, तीन काल भगवानुके स्मरण

आवरणचित्र-परिचय

गीताज्ञानका पुनर्स्मरण



पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया, तो वे दिव्य सभा-भवनमें आनन्दके साथ रहने लगे। एक दिन स्वेच्छासे घूमते-घूमते श्रीकृष्णके सहित अर्जुन सभामण्डपके ऐसे भागमें

पहुँचे, जो स्वर्गके समान सुन्दर था। पाण्डुनन्दन अर्जुन श्रीकृष्णके साथ रहकर बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने कहा-

'देवकीनन्दन! जब युद्धका अवसर उपस्थित था, उस समय मुझे आपके माहात्म्यका ज्ञान और ईश्वरीय स्वरूपका दर्शन हुआ था, किंतु वह सब इस समय बुद्धिके दोषसे भूल गया है। उन विषयोंको सुननेके लिये बारंबार मेरे मनमें उत्कण्ठा होती है। अत: पुन: वह सब विषय मुझे सुना दीजिये।'

श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन! उस समय मैंने तुम्हें अत्यन्त गोपनीय विषयका श्रवण कराया था, अपने स्वरूपभूत धर्म-सनातन पुरुषोत्तमतत्त्व और शुक्ल-कृष्ण गतिका निरूपण करते हुए नित्य लोकोंका भी वर्णन किया था; किंतु तुमने जो अपनी नासमझीके कारण उस उपदेशको याद नहीं रखा, यह जानकर मुझे बड़ा खेद हुआ है। अब

मेरे लिये उस उपदेशको ज्यों-का-त्यों दुहरा देना कठिन

वर्णन किया था। अब उस विषयका ज्ञान करानेके लिये मैं एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ। एक दिनकी बात है, एक दुर्धर्ष ब्राह्मण ब्रह्मलोकसे

उतरकर मेरे यहाँ आये। मैंने उनकी विधिवत् पूजा की और मोक्षधर्मके विषयमें प्रश्न किया। मेरे प्रश्नका उन्होंने जो उत्तर दिया, वही मैं तुम्हें बतला रहा हूँ।

ब्राह्मणने कहा—मधुसुदन!मनुष्य नाना प्रकारके शुभ

कर्मींका अनुष्ठान करके केवल पुण्यके संयोगसे इस लोकमें उत्तम फल और देवलोकमें स्थान प्राप्त करते हैं। जीवको कहीं भी अत्यन्त सुख नहीं मिलता। तपस्या आदिके द्वारा कितने ही कष्ट सहकर बड़े-से-बड़े स्थानको क्यों न प्राप्त किया जाय, वहाँसे भी बार-बार नीचे आना ही पडता है।

मैंने काम-क्रोधसे युक्त और तृष्णासे मोहित होकर अनेकों बार पाप किये हैं और उनके फलस्वरूप घोर कष्ट देनेवाली

अशुभ गतियोंको भोगा है। कितनी ही बार मुझसे प्रियजनोंका वियोग और अप्रिय मनुष्योंका संयोग हुआ है। जिस धनको मैंने बहुत कष्ट सहकर कमाया था, वह मेरे देखते-देखते नष्ट हो गया है। मैंने अनेकों बार घोर नरकमें पडकर यमलोककी यातनाएँ सही हैं और इस लोकमें जन्म लेकर बारंबार बुढ़ापा, रोग और राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंके दु:खोंका

अनुभव किया है। इस प्रकार बारंबार क्लेश उठानेसे एक दिन मेरे मनमें बड़ा संताप हुआ और मैंने दु:खोंसे घबराकर परमात्माकी शरण ली तथा समस्त लोक-व्यवहारका परित्याग कर दिया। अब परमात्माकी कृपासे मुझे यह उत्तम सिद्धि

ब्राह्मणश्रेष्ठने मुझसे जीवकी मृत्यु और उसकी त्रिविध गति, जीवके गर्भ-प्रवेश, आचार-धर्म, कर्मफलकी अनिवार्यता. संसारसे तरने तथा मोक्षप्राप्तिके उपायका वर्णन किया। मोक्ष-धर्मका आश्रय लेनेवाले वे ब्राह्मणश्रेष्ठ सिद्ध

मुनि मुझसे यह प्रसंग सुनाकर वहीं अन्तर्धान हो गये।

प्राप्त हुई है। अब मैं पुन: इस संसारमें नहीं आऊँगा।

श्रीकृष्ण कहते हैं-हे अर्जुन! इसके बाद उन

पार्थ! यह मैंने देवताओं के लिये भी परम गोपनीय रहस्य बतलाया है। इस जगत्में कभी किसी भी मनुष्यने इस रहस्यका श्रवण नहीं किया है। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ^{है}। ਜਾਨੇਰਿੰਗ ਤਜ਼ਰ ਰਾਜ਼ਣ ਨਾਹਿ ਤਰਦ ਨਿੰਦਾ ਅਜੈੱਤੇ ਤਾਸਰਵਦਾ ਰੁਕੁਨਰਾ _ਕਜਜ਼ਾਬਾ ਭਾਜਨ ਜ਼ਿਸ਼ਦਾ ਆ ਜਾਂਸਾ ਦਾ ਹੈ। ਅਤੇ ਕਿਸਾਤਾ ਸ श्रीगीताजयन्ती और गीताकी महिमा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

श्रीगीताजयन्ती और गीताकी महिमा



संख्या १२]

शुक्ला ११ को ही क्यों मनायी जाती है? इसी दिन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके प्रति गीताका उपदेश दिया था, इसका क्या प्रमाण है ? इसके लिये हमें महाभारतके युद्धारम्भ एवं पितामह भीष्मके परलोकगमनके कालपर दृष्टिपात करना आवश्यक है-महाभारत, भीष्मपर्वके अध्याय २, श्लोक २३-२४ में लिखा है कि कार्तिककी

पूर्णिमाके चन्द्रमाको देखकर श्रीवेदव्यासजीने धृतराष्ट्रसे

कहा कि निकट भविष्यमें बड़ा भयंकर युद्ध होनेवाला

है; क्योंकि चन्द्रमाका रूप अग्निके समान लाल,

कान्तिहीन और अलक्ष्य दिखायी पड़ता है।* महाभारत, अनुशासनपर्वके १६७वें अध्यायके २७वें-२८वें श्लोकोंमें वर्णन आता है कि भीष्मजीने माघ शुक्ला अष्टमीके दिन अपने शरीरका परित्याग किया था। श्रीभीष्मजी

बहुत दिनोंतक शरशय्यापर पड़े रहे। इस हिसाबसे माघ शुक्लपक्ष या पौष शुक्लपक्षमें तो गीताजयन्ती हो नहीं सकती, प्रत्युत मार्गशीर्षमें ही हो सकती है।

यदि शुक्लपक्ष न मानकर कृष्णपक्ष ही गीता-जयन्तीका काल मान लिया जाय, तो वह भी ठीक नहीं; क्योंकि महाभारत, द्रोणपर्वमें वर्णन है कि चौदहवें दिनकी रात्रिमें जो संग्राम हुआ था, उस समय घोर अन्धकार था, प्रज्वलित दीपकों (मशालों)-के प्रकाशमें ही वह युद्ध हुआ था (देखिये अ० १६३); वहाँ अँधेरेमें अपने-परायेका ज्ञान न रहनेसे लोग अपने पक्षके वीरोंका

भी संहार करने लगे। तब अर्जुनने युद्ध बन्द करके विश्राम करनेकी आज्ञा दे दी (देखिये अ० १८४)। इस प्रकारकी अन्धकारमयी रात्रि कृष्णपक्षमें ही रहती है। इस हिसाबसे गीताके प्राकट्यका समय कृष्णपक्ष नहीं हो

सकता; क्योंकि गीता युद्धारम्भके पहले ही कही गयी थी और उक्त चौदहवें दिनकी रात्रिके युद्धके समयमेंसे तेरह दिन घटानेपर शुक्लपक्ष ही सिद्ध होता है। यदि कहें 'कि एकादशीके दिन ही गीता कही गयी, इसका क्या प्रमाण है?' तो इसका उत्तर यह है कि उक्त चौदहवें दिनकी रात्रिमें आधी रातके पश्चात् चन्द्रमाके उदय होनेपर पुन: युद्ध आरम्भ हुआ था।

नवमी मानें तो उससे तेरह दिन घटानेपर मार्गशीर्ष शुक्ल ११ ही ठहरती है। यदि यह मानें कि प्राचीनकालकी गणनामें शुक्लपक्ष पहले गिना जाता था, कृष्णपक्ष बादमें - इस न्यायसे

वहाँका चन्द्रमाका वर्णन कृष्णपक्षकी नवमीके जैसा है;

क्योंकि अर्धरात्रिके बाद चन्द्रोदय अष्टमीके पूर्व हो नहीं

सकता। अतः उस युद्धकी रात्रिको पौष कृष्णपक्षकी

मार्गशीर्ष कृष्ण नवमीकी रात्रिमें युद्ध हुआ तो इसमें कोई विरोध नहीं है। उस कालसे भी १३ दिन घटानेपर तिथि मार्गशीर्ष शुक्ल ११ ही ठहरती है।

इसके सिवा एकादशीका दिन पर्वकाल है और

मार्गशीर्षका महीना सबसे उत्तम माना गया है, जिसके लिये स्वयं भगवान्ने गीतामें कहा है—'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्-(१०। ३५)।' इन सब प्रमाणोंके

* अलक्ष्यः प्रभया हीनः पौर्णमासीं च कार्तिकीम्। चन्द्रोऽभूदग्निवर्णश्च पद्मवर्णनभस्तले॥ स्वप्स्यन्ति निहता वीरा भूमिमावृत्य पार्थिवा:। राजानो राजपुत्राश्च शूरा: परिघबाहव:॥ आधारपर ही अनेक पण्डितोंने यह निर्णय किया है 'महाभारतरूपी अमृतके सर्वस्व गीताको मथकर कि मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को ही युद्ध आरम्भ हुआ और उसमेंसे सार निकालकर भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके था और उसी दिन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके प्रति मुखमें उसका हवन किया है।' गीतोपदेश दिया था।* गीता सारे उपनिषदोंका सार है। शास्त्रमें बतलाया है— संसारमें अध्यात्मविषयक ग्रन्थ गीताके समान और सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः। कोई नहीं है। गीतापर जितनी टीकाएँ, भाष्य और अनुवाद पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥ 'सम्पूर्ण उपनिषद् गायें हैं, गोपालनन्दन श्रीकृष्ण नाना प्रकारकी भाषाओं और लिपियोंमें मिलते हैं, उतने उनको दुहनेवाले (ग्वाला) हैं, अर्जुन बछड़ा हैं और दूसरे किसी धार्मिक ग्रन्थपर नहीं मिलते। गीताप्रेस, गोरखपुरमें ही संस्कृत, हिंदी, गुजराती, बँगला, मराठी, गीताप्रेमी भगवत्-जन उनसे निकले हुए महान् गीतामृतरूपी उर्दू, अरबी, फारसी, गुरुमुखी, अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि दूधका पान करनेवाले हैं।' अनेक भाषाओं और लिपियोंमें मूल तथा भाषाटीका सम्पूर्ण शास्त्रमें गीताको सर्वोपरि माना गया है। मिलाकर १३००से अधिक गीताओंका संग्रह है। कहा है-गीताकी महिमा जो पद्मपुराणमें मिलती है, उसे शास्त्रं देवकीपुत्रगीत-एकं

देखनेपर मालूम होता है कि गीताके सदृश महिमा दूसरे किसी ग्रन्थकी नहीं। गीताकी महिमा महाभारतमें स्वयं वेदव्यासजीने भी कही है-गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः। ही एक सर्वोपरि शास्त्र है, श्रीकृष्ण ही एकमात्र या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद् विनिःसृता॥ सर्वोपरि देव हैं, उनके जो नाम हैं, वे ही सर्वोपरि (भीष्मपर्व ४३।१) मन्त्र हैं और उन परमदेवकी सेवा ही एकमात्र सर्वोपरि 'गीताका ही अच्छी प्रकारसे श्रवण, कीर्तन, पठन-

पाठन-मनन और धारण करना चाहिये; अन्य शास्त्रोंके कर्म है।' संग्रहकी क्या आवश्यकता है ? क्योंकि वह स्वयं पद्मनाभ भगवान्के साक्षात् मुखकमलसे निकली हुई है।' फल तो अधिक-से-अधिक स्नान करनेवालेकी मुक्ति

सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वदेवमयो हरि:। सर्वतीर्थमयी गंगा सर्वदेवमयो मनुः॥ (भीष्मपर्व ४३।२) 'जैसे मनुजी सर्वदेवमय हैं, गंगा सकलतीर्थमयी

है और श्रीहरि सर्वदेवमय हैं, इसी प्रकार गीता सर्वशास्त्रमयी है।'

भारतामृतसर्वस्वगीताया मथितस्य

सारमुद्धृत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखे हुतम्॥

सकता। किंतु गीतारूपी गंगामें स्नान करनेवाला तो

सकता है।

स्वयं मुक्त होता है और दूसरोंको भी मुक्त कर

मेको देवो देवकीपुत्र

कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा॥

'श्रीदेवकीनन्दन श्रीकृष्णका कहा हुआ गीताग्रन्थ

गीता गंगासे भी बढ़कर है। गंगामें स्नान करनेका

बताया गया है। यों गंगामें स्नान करनेवाला तो स्वयं ही मुक्त हो सकता है, वह दूसरोंको मुक्त नहीं कर

एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि

गीताकी भाषा भी मधुर, सरल, अर्थ और भावयुक्त है। अतएव सभी माता-बहिनों और भाइयोंको प्रतिदिन

कम-से-कम एक अध्यायका पाठ तो अर्थ और भाव समझते हुए अवश्य करना ही चाहिये।

िभाग ९४

एव।

* 'गीता-धर्म-मण्डल' पूनाने तथा प्रसिद्ध विद्वान् श्रीकरंदीकर महोदयने बहुत-से प्रमाणोंसे यह सिद्ध किया है कि गीताका उपदेश मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को ही हुआ था। प्रसिद्ध ज्योतिषी पं० श्रीइन्द्रनारायणजी द्विवेदीका भी यही मत है। प्रख्यात ऐतिहासिक स्व० श्रीचिन्तामणिराव

(भीष्मपर्व ४३।५)

वैद्यने मार्गशीर्ष शु० १३को गीताकी जन्मतिथि बतलाया है—'सम्पादक'

स्वच्छ वस्त्रोंका आध्यात्मिक प्रभाव संख्या १२] स्वच्छ वस्त्रोंका आध्यात्मक प्रभाव (आचार्य डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम० ए०, पी०-एच० डी०) जिस प्रकार स्नान करनेके उपरान्त सम्पूर्ण शरीरके आन्तरिक आह्लादका देनेवाला है। त्वचा-रन्ध्र खुल जानेसे और घर्षणसे एक प्रकारकी स्फूर्ति स्वच्छ वातावरणकी सृष्टि करनेमें मनुष्योंके वस्त्रोंका प्राप्त होती है, उसी प्रकार स्वच्छ और नवीन वस्त्रोंको बड़ा सम्बन्ध है। वस्त्र उसके शरीरसे निकटतम सम्पर्क धारण करनेसे मनुष्यकी आत्माको प्रसन्नता प्राप्त होती है। रखते हैं। उनके अनुसार उसकी अन्तर्वृत्तिका निर्माण होता चलता है। यदि उनमें स्वच्छता है, तो स्वभावत: मनमें आत्माका गुण स्वच्छता है। वह विकार, दुर्गुण, सब पवित्र विचारोंका क्रम चलने लगता है। विचार-प्रवाह प्रकारके मल पदार्थोंसे मुक्त है। उसमें गन्दगी टिक नहीं सकती। पाप-पंकका उसपर छींटा नहीं पड़ सकता। यदि स्वयं पवित्रता और सात्त्विकताकी ओर रहता है। गन्दगीसे कोई वस्तु उसे पंकिल करनेका उद्योग करती है, तो हमारी विचार उतने ऊँचे नहीं उठ पाते। उनकी नैतिकताको अन्तरात्मामें पश्चात्ताप और आत्मग्लानिकी चीत्कार उठती अप्रत्याशित चोट लगती है। गन्दे वस्त्रोंके सम्पर्कमें रहते-है। कोई भी दुर्विचार, पापमय कल्पना, कुत्सित वासना, रहते उसकी उच्च शक्तियाँ धीरे-धीरे पंगु हो जाती हैं। हमारी नैतिकतासे हेय निकृष्ट भावना जब मन:क्षेत्रमें प्रविष्ट महात्मा गाँधीजीका विश्वास था कि खद्दरके होकर हमारे सत्य, प्रेम, कर्तव्यनिष्ठाको विशृंखलित कर स्वच्छ वस्त्र पहनकर ही वे सत्य, न्याय, अहिंसा, देती है, तब आत्मामें एक आन्तरिक आघातका हम सब विश्व-बन्धुत्वके पवित्र विचारोंसे प्रेरित हो जाते थे। अनुभव करते हैं। इसका कारण क्या है? प्रत्येक सत्याग्रहीको खद्दर पहनना चाहिये। खद्दर और विचारोंकी पवित्रताका निकट सम्बन्ध है। आत्माद्वारा हमें किसी भी ऐसे अनैतिक कार्यके लिये सहयोग प्राप्त नहीं हो सकता, जो किसी भी प्रकारकी वातावरणको स्वच्छता और वस्त्रको स्वच्छता मनकी स्वच्छता उत्पन्न करनेवाली है। जो व्यक्ति स्वच्छ कायिक, वाचिक, मानसिक गन्दगीसे युक्त हो।गन्दी धारणाएँ या अश्लील कृत्य करनेवाले आत्माकी ध्वनिकी अवहेलनाकर रहनेका अभ्यस्त है, उसके विचारोंका स्तर गन्दे वस्त्रोंवालेसे गन्दे कार्योंमें प्रविष्ट होते हैं; किंतु अन्दर-ही-अन्दर उन्हें ऊँचा रहता है। एक मनोव्यथा दुखी करती रहती है। कुछ कालके लिये स्वच्छता दैवत्वका सामीप्य है (Cleanliness is next आप इस आन्तरिक ध्वनिका दमन भले ही कर दें, इसका to Godliness)—इस उक्तिमें महान् संदेश भरा है। स्वच्छता पवित्र कार्य निरन्तर चलता रहता है। क्रमशः देवत्वके समीप हमें ले जाती है। देवताओंका एक आत्मध्वनिका कार्य है अन्तर्मनमें सफाईका कार्य विशिष्ट गुण स्वच्छता है। स्वच्छ रहकर आप वातावरणकी करना; जो गन्दे विचार, मन्त्रणाएँ या कल्पनाएँ आयें, दृष्टिसे देवत्वके समीप पहुँच जाते हैं। उन्हें गन्दगीसे हटाकर नीरक्षीर-विवेकद्वारा मनुष्यको सत्पथकी कैसे परितापका विषय है कि जहाँ अन्य जातियाँ ओर अग्रसर रखना। जो व्यक्ति आत्मध्वनि सुनता है, उसे स्वच्छताके लिये सतत उद्योगशील हैं, बच्चोंमें स्वच्छताके

आत्मध्विन सीधा मार्ग दिखाती चलती है। उसके मन:क्षेत्रमें सर्वत्र स्वच्छता होती है। जहाँ कोई गन्दा विचार विद्रोहीकी भाँति उदित होता है, वहीं मनकी शुभ वृत्तियाँ उससे संघर्षकर उसे निकाल बाहर करती हैं।

बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है। स्वच्छता एक आदत है। यदि एक बार आदत डाल दी जाय तो जीवनभर मनुष्य उसे नहीं भूलता। याद रखना चाहिये कि स्वच्छता और शौकीनीमें बड़ा अन्तर है। शौकीनी दूसरोंको दिखानेके

बीज बोती हैं, वहीं हमारे यहाँ कतिपय लोगोंद्वारा इस ओर

चूँकि स्वच्छता हमारी आत्माका नैसर्गिक गुण है। अतः बाह्य स्वच्छतासे भी परितुष्टि एवं प्रसन्नता प्राप्त लिये होती है और स्वच्छता गन्दगीका नाश करनेके लिये। शौकीनी तो स्वयं एक मनकी गन्दगीमात्र है।

होती है। स्वच्छ वातावरणका प्रभाव स्वास्थ्य, प्रसन्नता,

सबमें भगवान्

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

किसका है?

सरित्समुद्रांश्च

हमलोगोंका जन्म भारतवर्षमें हुआ है, भारतवर्ष अत्यन्त करना उन्हींको दु:ख पहुँचाना, नुकसान पहुँचाना और तिरस्कृत

पवित्र भूमि है, इसलिये हमारा सौभाग्य है। भगवान्की यह करना है। शुक्लयजुर्वेद (४०।१)-का पवित्र आदेश है-

हमपर बड़ी कृपा है, इसमें कोई संदेह नहीं। परंतु भगवानुके लिये तो भारत और भारतेतर सभी देश—अनन्त ब्रह्माण्डका

प्रत्येक स्थान समान है तथा सब स्थानोंके निवासी चराचर सभी जीव उनके अपने हैं। सच्ची बात तो यह है कि भगवानुकी

दृष्टिसे उनके अपने सिवा और कुछ है ही नहीं—'मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति'।

हम यदि अपनेको भगवान्की संतान मानें तो जीवमात्र सभी उनकी प्रिय संतान हैं। वे ही सबके एकमात्र परम पिता

या वात्सल्यमयी माता हैं। माता-पिताको अपने सभी बालक प्रिय होते हैं। उनका सभीपर स्नेह और वात्सल्य है। वे

सभीका हित चाहते हैं और सभीको सुखी बनाना चाहते हैं। इस दृष्टिसे जगत्के हम सभी जीव परस्पर भाई-बहिन हैं, फिर चाहे हम भारतमें जन्मे हों या यूरोपमें, अमेरिकामें अथवा

ईरान-अफगानिस्तानमें; हम सभीको परस्पर एक-दूसरेके हितकी इच्छा करनी चाहिये और एक-दूसरेको सदा सुख पहुँचानेका प्रयत्न करना चाहिये। जिनका हृदय वात्सल्यसे भरा है, वे माता-पिता उस पुत्रपर कैसे प्रसन्न हो सकते हैं,

जो अपने दूसरे भाई या भाई-बहिनोंको दुखी देखकर, उन्हें दुखी बनाकर सुखी होना चाहता है। 'हिंदू सुखी रहे और सब सुखसे वंचित हों; भारतवासी सुख-सम्पन्न रहें, अन्य देशवासी

उनका दु:ख ही हमारा परम सुख बन जाय'—ऐसी भावना कितनी पापमयी है और परम पिता भगवानुको कितना अप्रसन्न

करनेवाली है, इसपर जरा गहराईसे विचार करें। हमारे यहाँ तो यह सिद्धान्त माना गया है और यह सत्य

है कि चराचर सभी रूपोंमें—अखिल जगतुके रूपमें हमारे भगवान् ही अभिव्यक्त हो रहे हैं। सब वही हैं या सब उन्हींके

शरीर हैं—वे सबमें सदा समानभावसे विराजमान हैं। अतएव किसी भी जीवको सुख पहुँचाना उनको सुख पहुँचाना है,

दु:ख भोगें; मनुष्य सुखी हों, इतर प्राणी सुख प्राप्त न करें, बल्कि सभीका सुख उनसे निकलकर हमारे पास आ जाय,

ईशा वास्यमिदः सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

जगत् है, यह सब ईश्वरसे व्याप्त है, उस ईश्वरको साथ

रखते हुए त्यागपूर्वक भोगते रहो। आसक्त मत होओ। धन

श्रीमद्भागवत (११।२।४१)-में कहा है—

हरे:

प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-वनस्पति, नदी, समुद्र—सभी भगवानुके

शरीर हैं। ऐसा समझकर जो कोई भी मिले, उसे

स्वयं भगवान् गीता (६।३०)-में कहते हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

सब (प्राणियों)-को मुझमें देखता है, उससे मैं कभी अदृश्य

चाहिये कि जिससे हमारी क्रियामें, हमारे वचनमें और हमारे

मनमें भी कभी किसीके अहितकी कल्पना भी न आये;

किसीको दुखी देखकर सुखी होनेका असत् तथा पापमय

नहीं होता और वह मुझसे कभी अदृश्य नहीं होता।

जो सर्वत्र (सम्पूर्ण प्राणियोंमें) मुझको देखता है और

इन सब शास्त्रवाक्योंपर ध्यान देकर हमें ऐसा बनना

अनन्यभावसे—भगवद्भावसे प्रणाम करे।

ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो दुमादीन्।

यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

यह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र,

शरीरं

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च

इस अखिल ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी जड़-चेतनरूप

संकल्प कभी न उठे। यह निश्चय मान लेना चाहिये कि

हित या हमको सुख कभी हो ही नहीं सकता। उचित तो यह

जिससे दुसरेका अहित या उनको दु:ख होगा, उससे हमारा

है कि अपने पास जो कुछ सुख-सामग्री हो, उसे, जहाँ उस

सुख-सामग्रीके अभावसे दु:ख फैला है, वहाँ बाँटते रहें।

किसीकी सेवा करना उन्हींकी सेवा करना है। किसीको उनकी अपनी वस्तु समझकर आदरपूर्वक उनको देते रहें और इसीमें अपनेको तथा उस सुख-सामग्रीको धन्य समझें। प्रणाम करना उन्हींको प्रणाम करना है और इसी प्रकार किसीको दु:सिं।भर्ह्सं सामा विश्वेषकी हो कि कारका ौरा कि सी खंड कि मुख्य सिंध के कि से सिंध के सिंध के सिंध के सिंध के

धन और भागवत-जीवन संख्या १२] धन और भागवत-जीवन [श्रीअरविन्दके वचनोंकी व्याख्या] (श्रीमधुसूदनजी वाजपेयी) धनकी आवश्यकता ठीक नहीं है। इससे यह शक्ति दानवी शक्तियोंके हाथोंमें ही रह जाती है। इसका भगवानुके लिये पुनरुद्धार धन ही हमारा एकमात्र लक्ष्य नहीं है, परंतु धनको अलग रखकर भी सर्वांगपूर्ण जीवनकी हमारी करना-क्योंकि यह भगवान्की है और भागवत जीवनके कल्पना पूरी नहीं होती। धन भी हमारे लक्ष्य अथवा लिये भागवतभावसे इसका उपयोग करना साधकका उपलक्ष्यका एक अंग है और महत्त्वपूर्ण अंग है। विज्ञानमूलक मार्ग है। श्रीअरविन्दके शब्दोंमें—धन एक विश्वजनीन शक्तिका धन अपने आपमें न अच्छा है न बुरा। वह स्थूल चिह्न है। यह शक्ति भूलोकमें प्रकट होकर केवल एक शक्तिका स्थूल चिह्न है। यह शक्ति प्राणवान् और जड़ दोनों क्षेत्रोंमें कार्य करती है। बाह्य अच्छे हाथोंमें पहुँचकर अच्छे उपयोगसे अच्छी बन जीवनकी पूर्णताके लिये इसका होना अनिवार्य है। जाती है और ब्रे हाथोंमें जाकर ब्रे उपयोगसे यही श्रीअरविन्द आगे लिखते हैं—'अपने मूल और बुरी बन जाती है। बुराईकी तरह अच्छाईको भी अपने वास्तविक कर्मकी दृष्टिसे यह शक्ति भगवान्की है। परंतु कार्यके लिये शक्ति चाहिये। यदि हम अच्छे कार्य भगवानुकी अन्यान्य शक्तियोंके समान यह शक्ति भी करना चाहते हैं तो हमें वह शक्ति प्राप्त करनी चाहिये, जिसका स्थूल चिह्न धन है। भगवान्के यहाँ दूसरोंको सौंप दी गयी है और इस कारण कार्यके लिये हमें धनी और शक्तिशाली बनकर अपने अध:प्रकृतिके अज्ञानान्धकारमें इसका अहंकारके काममें अपहरण हो सकता है अथवा असुरोंके प्रभावमें आकर धन और शक्तिका-जो वास्तवमें भगवानुके हैं-विकृत होकर यह उनके काम आ सकती है। मानव-सदुपयोग करना चाहिये। आधिपत्य, धन और काम—ये तीन शक्तियाँ अहंकार और असुर जिन तीन शक्तियोंसे सबसे अधिक बुराईको अपनाये बिना प्राप्त नहीं होतीं—यों समझना आकर्षित होते हैं और जो प्राय: अनधिकारियोंके हाथोंमें

शक्तियोंमेंसे एक शक्ति है धन। धनके चाहनेवाले या रखनेवाले धनके स्वामी तो क्या होते हैं, अधिकतर धनके दास ही होते हैं। धन जो बहुत कालसे असुरोंके हाथोंमें रहा और इसका जो बराबर दुरुपयोग हुआ, इससे इसपर दोषकी एक ऐसी गहरी छाप लगी हुई है कि उससे कोई कठिनाईसे ही बचता हो। इसीलिये प्राय: सभी आध्यात्मिक साधन-मार्गोंमें पूर्ण संयम, अनासक्ति और धनके सब बन्धनों तथा प्रत्येक प्रकारकी वैयक्तिक और अहंकारयुक्त वित्तैषणाके त्यागपर इतना जोर दिया

समझते हैं और यह बतलाते हैं कि दरिद्रता और

अपरिग्रहका होना ही आध्यात्मिक स्थिति है। पर यह

पड़ जाती हैं तथा ये अनिधकारी जिनका दुरुपयोग ही

करते हैं, उन्हीं आधिपत्य, धन और काम-इन तीन

जाता है। कुछ साधन-मार्ग तो धन-वैभवको पाप ही

पवित्र उपायोंसे प्राप्त किया गया धन पवित्र होता है। ऐसे पवित्र धनवानों (शुचि श्रीमानों)-के घरोंमें महान् पुरुष (योगभ्रष्ट साधक) जन्म लेते हैं। या फिर उनका जन्म बुद्धिके धनी योगियोंके ही कुलमें होता है। ऐसे जन्मको और भी दुर्लभ बताकर गीतामें धनसे ज्ञानकी श्रेष्ठता बतायी गयी है। ज्ञानके साथ ही हमें धन आदि बाह्य शक्तिकी भी आवश्यकता है। धन-विजयका उद्देश्य

बिलकुल प्रारम्भसे ही हमारे मनमें धन-विजयका

भूल है। और यह समझना भी भूल है कि इन तीन

शक्तियोंसे सम्पन्न होनेके कारण ही कोई व्यक्ति वन्दनीय

हो जाता है। उसने ये शक्तियाँ कैसे प्राप्त कीं और वह

इनका कैसा उपयोग करता है, इसीसे उसकी श्रेष्ठता या

नीचता सिद्ध होती है।

[भाग ९४ ********************* ************************* उद्देश्य स्पष्ट रहना चाहिये। इस बातकी ओर हमें चाहिये। धनको केवल यह समझो कि यह एक शक्ति निरन्तर जागरूक रहना चाहिये कि धन हमें स्वयं अपने है, जिसे माताकी सेवाके लिये जीतकर लौटा लाना और लिये नहीं, बल्कि भगवानुके कार्यके लिये प्राप्त करना उन्हींकी सेवामें अर्पण करना है। है। इस प्रकार यह योगका और योगके अन्तर्गत भक्तिका धन-विजयका यह उद्देश्य हमें निरन्तर अपने सामने रखना चाहिये कि जो (धन) अपने मूल और मार्ग है, जिसका पथप्रदर्शन स्वयं भगवान्ने किया है। वास्तविक कर्मकी दृष्टिसे भगवान्का है, वह जहाँ-कहीं गीताके नौवें अध्यायमें इस राजमार्गको 'सुखमय साधना' अनुपयुक्त हाथोंमें है, उनसे जीतकर लौटा लाना है उसे (सुसुखं कर्तुम्) कहा है। यह साधना सुखमय तो है, परंतु इसके साधकको निरन्तर जागरूक रहना होता है; पुन: भगवानुकी सेवामें अर्पण करना है। धनका स्वामित्व जब सारी दुनिया सोती है, तब भी इस पथका पथिक जागता रहता है। परंतु इस मार्गके साधकका जागना हमें धनका दास नहीं बनना चाहिये। परंतु इसका औरोंकी तरह नहीं होता। और लोग अपने लिये जागते यह अर्थ नहीं कि हम स्वयं धनके स्वामी बन जायँ। हैं और यह भगवान्के लिये जागता है। सारा धन भगवान्का है और हमें धन उन्हींकी सेवामें धन-विजयका उद्देश्य यदि हमारे मनमें पहलेसे ही लगाना है। हमें केवल पात्र बनना चाहिये; जिसे भगवान् स्पष्ट न रहेगा तो होगा यह कि धन प्राप्त होते ही हम भरते रहें और खाली करते रहें। बहते रहनेमें ही धनकी उसे अपने ही विषय-भोगोंमें लगा देंगे और इससे भी भी और पात्रकी भी पवित्रता सुरक्षित है। बुरा यह होगा कि हम धनके स्वामी न रहकर उसके जो (धन) भगवान्के पाससे आया है और जो दास बन जायँगे। अर्थात् धन हमारे लिये न होगा बल्कि उन्हींके पास चला जायगा, वह जबतक हमारे पास है, हम धनके लिये होंगे, जब कि ये दोनों ही बातें नासमझीकी तबतक उसका अच्छे-से-अच्छा उपयोग करना हमारा हैं; क्योंकि सारा धन वास्तवमें भगवान्का है और धर्म है। श्रीअरविन्दके शब्दोंमें—'सारा धन भगवान्का उन्हींके काममें उसका उपयोग करना हमारा धर्म है। है; और यह जिन लोगोंके हाथमें है, वे उसके ट्रस्टी इसका यह अर्थ नहीं कि भगवान्के कार्यक्षेत्रसे (रक्षक) हैं, मालिक नहीं। आज यह इनके पास है, कल हमारा जीवन बाहर है। बल्कि यदि हमने अपने आपको कहीं और चला जा सकता है। जबतक यह इनके पास है, तबतक ये इस ट्रस्टका पालन कैसे करते हैं, किस भावसे

भगवान्के कार्यका निमित्त बन जाने दिया है तो हम उनके और भी निकट हैं। जो सारे संसारको सुख-समृद्धि प्रदान करते हैं, उनके वरदान प्राप्त करनेके हम और भी अधिक अधिकारी हैं। वे वरदान हमें अवश्य प्राप्त होंगे। हाँ, जब वे वरदान हमें प्राप्त हों, तब उनसे हमें वैरागियोंकी तरह भागना नहीं चाहिये। इस प्रकार उनके

या इनके भोगमें पड़े रहनेकी दासत्व-वृत्ति ही पोसनी

काममें करते हैं—इसीपर सब कुछ निर्भर करता है।' धनका सदुपयोग

पवित्र साधनोंसे धन प्राप्त करना इस साधनाका पूर्वार्ध है तो पवित्र कार्योंमें इसका उपयोग करना इस साधनाका उत्तरार्ध है। जितनी सावधानी हमें धन प्राप्त करनेमें रखनी

भगवानुके सेवकके रूपमें ही हमें अपने लिये भी

करते हैं, किस बुद्धिसे उसका उपयोग करते हैं और किस

वरदानोंसे भागना तो उनका अपमान करना है। भगवान्के द्वारा जो पुरस्कार हमारे पास भेजे जायँ, उनको हमें है, उतनी ही सावधानी इसके व्ययमें भी रखनी है। सादर स्वीकार करना चाहिये। वह सब तो उनका प्रसाद धनविजयका जो उद्देश्य हमने अपने सामने रखा था, उसे

है। श्रीअरविन्दके शब्दोंमें—'धनशक्ति और उससे प्राप्त हमें धन प्राप्त होनेके बाद भी निरन्तर अपने सामने रखना होनेवाले साधनों और पदार्थींसे तुम्हें वैरागियोंकी तरह चाहिये। और जिस कार्यके लिये हमने धन प्राप्त किया है, भागना न चाहिये और न इनकी कोई राजसी आसक्ति उसी कार्यमें उसका उपयोग करना चाहिये।

धन और भागवत-जीवन संख्या १२] प्राप्त धनके उचित अंशका उपयोग करना चाहिये और होगी। मनका समत्व, किसी स्पृहाका न होना और जो सदैव याद रखना चाहिये कि हमारा सम्पूर्ण जीवन और कुछ तुम्हारे पास है और जो कुछ तुम्हें मिलता है और हमारा प्रत्येक कर्म भगवान्के लिये है। श्रीअरविन्दके तुम्हारी जितनी भी उपार्जनशक्ति है, उसका भागवती शब्दोंमें—'अपने लिये जब तुम धनका उपयोग करो, तब शक्तिके चरणोंमें तथा उन्हींके कार्यमें सर्वथा समर्पण-जो कुछ तुम्हारे पास है, जो कुछ तुम्हें मिलता है या ये ही लक्षण हैं धनदोषसे मुक्त होनेके। धनके सम्बन्धमें या उसके व्यवहारमें किसी प्रकारकी मनकी चंचलता, जो कुछ तुम ले आते हो, उसे माताका समझो। स्वयं कुछ भी मत चाहो; पर वे जो कुछ दें, उसे स्वीकार करो कोई स्पृहा, कोई कुण्ठा किसी-न-किसी दोष या और उसी काममें उसे लगाओ, जिसके लिये वह तुम्हें बन्धनका ही निश्चित लक्षण है।' दिया गया हो। नितान्त नि:स्वार्थ, सर्वथा न्यायनिष्ठ, भगवान्के लिये ही यदि हम कोई व्यापार या ठीक-ठीक हिसाब रखनेवाले, तफसीलकी एक-एक व्यवसाय करेंगे तो उसमें अपने महान् उद्देश्यके अनुरूप बातका ध्यान रखनेवाले उत्तम ट्रस्टी बनो; सदा यह अवश्य ही महती सफलता प्राप्त करेंगे, जो भगवानुके ध्यान रखो कि तुम जिस धनका उपयोग कर रहे हो, कार्यकी ही सफलता होगी। वह उनका है, तुम्हारा नहीं। फिर उनके लिये जो कुछ धनके भागवत विजेता तुम्हें मिले, उसे श्रद्धाके साथ उनके सामने रखो, अपने धन केवल सज्जनोंको ही प्राप्त होता हो, ऐसी बात या और किसीके काममें उसे मत लगाओ।' नहीं है; परंतु आध्यात्मिक साधकको धन तभी प्राप्त होता धन-विजयकी क्षमता है, जब उसका जीवन पूर्णतया पवित्र बन जाता है। जैसा आध्यात्मिक साधकके लिये धन-विजयके मार्गमें दो कि श्रीमॉॅंने लिखा है—'जब तुम्हारे पास कुछ नहीं रह बड़ी बाधाएँ आती हैं। एक बाधा तो भगवान्की जायगा, तब तुम्हें सब कुछ मिल जायगा।' यह रिक्तता और पवित्रताका मार्ग ही साधकके लिये पूर्णताका मार्ग ही ओरसे होती है। भगवान् नहीं चाहते कि उनके है। श्रीअरविन्दके शब्दोंमें—'विज्ञानकृत सृष्टिमें धन-बल भक्तका पतन धनके कारण हो। अत: जबतक साधकमें धनकी इच्छा या आसक्ति शेष रहती है, तबतक उसे धन भागवती शक्तिको पुनः प्राप्त करा देना होगा और माँ मिलनेमें बाधाएँ उपस्थित होती रहती हैं। जब वह धनके भगवती अपनी सृष्टि-दृष्टिकी प्रेरणासे जो प्रकार निर्धारित दोषसे मुक्त हो जाता है और धनके कारण उसके करेंगी, उसी प्रकारसे उसका विनियोग एक नवीन दिव्यीकृत पतनका खतरा तनिक भी नहीं रहता, तब उसके मार्गसे प्राणिक और भौतिक जीवनके सत्य-सुन्दर-सुसंगत संघटन दैवी बाधाएँ हटा दी जाती हैं। और सुव्यवस्थापनमें करना होगा। पर पहले यह धन-धनकी प्राप्तिमें दूसरी बाधा स्वयं साधककी ओरसे शक्ति उनके लिये जीतकर लौटा लानी होगी और इस रहती है। वह यह कि बहुत-से साधक दरिद्रताको ही विजय-सम्पादनमें वे ही सबसे अधिक बलवान् होंगे, जो जीवनका आदर्श मानते हैं। यदि वे ऐसा मानते हैं तो अपनी प्रकृतिके इस हिस्सेमें सुदृढ़, उदार और अहंकारनिर्मुक्त कोई आश्चर्य नहीं यदि उन्हें धन नहीं प्राप्त होता। हैं, जो कोई प्रत्याशा नहीं करते, अपने लिये कुछ बचाकर धनकी हमें अपने लिये इच्छा नहीं करनी चाहिये, परंतु नहीं रखते या किसी संकोचमें नहीं पडते, जो परमा इच्छाका ही दूसरा रूप धनसे भागना है। श्रीअरविन्दके शक्तिके विशुद्ध शक्तिशाली यन्त्र हैं।'

अतएव हमारा पहला कार्य यही है कि अपने-आपको

पूर्णरूपसे भगवान्के कार्यके लिये अर्पित कर दें। इसके

बाद उनके प्रसादसे विजय-पर-विजय प्राप्त होगी ही।

शब्दोंमें—'यदि धनके दोषसे तुम मुक्त हो, पर साथ ही संन्यासीकी तरह तुम उससे भागते नहीं हो तो भागवत-कर्मके लिये धन-जय करनेकी बड़ी क्षमता तुम्हें प्राप्त

िभाग ९४ मुक्ति स्वतः हो रही है साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) जीवमात्र सुख चाहता है। सुख भी ऐसा, जिसमें साथ नहीं रहेंगे, बस, केवल उनको अपना नहीं मानना किसी प्रकारकी कमी न रहे और जिसका कभी नाश न है—यह कितनी सुगम बात है। गीतामें बन्धनसे छूटे हुए हो। अर्थात् वह अक्षय और अनन्त सुख चाहता है। गुणातीत पुरुषोंके लक्षणोंमें आया है-इसीका नाम तो 'मुक्ति' है अर्थात् दुःखोंका अत्यन्त समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः। अभाव हो जाना और आनन्दकी प्राप्ति हो जाना ही तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥ मृक्ति है। भगवद्गीतामें छठे अध्यायका बाईसवाँ श्लोक मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः। बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इस बातकी कसौटी कसनेके लिये सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥ इस श्लोकको पहला स्थान दे दिया जाय तो कोई (१४। २४-२५) अतिशयोक्ति न होगी-गुणातीत पुरुषकी सुख-दु:खमें भी समता रहती है। उसके अन्त:करणमें हानि-लाभमें भी समता रहती यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं तत:। है। निन्दा-स्तृतिमें भी समता रहती है; क्योंकि वह स्वत: यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥ जिस लाभके प्राप्त होनेके बाद फिर और कोई अपने स्वरूपमें स्थित है। लाभ हो सकता है, ऐसा उसके (लाभ प्राप्त होनेवालेके) जिन रुपयोंमें अपनापन नहीं है, जिन मकान-माननेमें भी नहीं आ सकता। जिसमें स्थित होनेपर वह जमीनमें अपनापन नहीं है, जिन कुटुम्बियोंमें अपनापन बड़े भारी दु:खसे भी विचलित नहीं किया जा सकता नहीं है, उनके बनने-बिगडनेका असर अपने ऊपर नहीं अर्थात् किसी कारणसे शरीरके टुकड़े किये जायँ, शरीर पडता। संसारमें अरबों आदमी हैं, पर उनके जीने-

असिंग्वीयमं क्र मिंडस्वर्य रहेन पहें https://dsc.gg/dharman John Fakti की सिद्ध पहा हुई Avinas स्दिक्ष

दो पहाड़ोंके बीचमें आ जाय-ऐसी स्थितिमें भी उसकी जो शान्ति है अथवा उसका जो आनन्द है, उसमें कभी भी कमी नहीं आती। तात्पर्य यह है कि उसको दु:खका स्पर्श ही नहीं होता, ऐसा बड़ा भारी लाभ हो जाता है। दु:खोंसे, कर्मोंसे, जन्म-मरणसे मुक्त हो जाना, छूट जाना-यह जो 'मुक्ति' कहलाती है, यह तो बड़ी सीधी और सरल बात है। शास्त्रोंमें दोनों तरहकी बातें आती हैं—कठिनताकी बात भी आती है और सुगमताकी बात भी। गीतामें कहा गया है कि परमात्मतत्त्व कड़ी स्गमतासे प्राप्त किया जा सकता है—'स्सुखं कर्तुम्।'

वही अविनाशी है, प्राप्त होनेके बाद फिर उसका विनाश

दीखता है; शरीर, कुटुम्ब, धन-सम्पत्ति, मकान-जमीन

आदि अपने दीखते हैं, ये सब पहले अपने साथ थे नहीं

ऐसी सुगम बात क्या है? जो संसार आज अपना

होता ही नहीं।

पहुँचती। कोई अनजान व्यक्ति धनी हो जाय, तो उससे कोई हर्ष भी नहीं होता। उनके सुख-दु:ख, हानि-लाभमें हमारी समता है। यों तो संसारके बहुत-से धनसे, मकानोंसे, कुटुम्बियोंसे हम मुक्त हैं ही। थोड़े-से रुपयों, थोड़ी-सी जमीन और थोड़े-से मनुष्योंमें ही अपना माननेके कारण हम बँधे हुए हैं। ज्यादा मुक्ति तो हो चुकी। बस, थोड़ी-सी मुक्ति बाकी है। अब हिम्मत करके इनसे भी मुक्ति कर लें। इनसे मुक्ति करनेमें कोई कठिनता भी नहीं है; क्योंकि धन, मकान, कुटुम्ब पहले अपने थे नहीं और बादमें अपने

रहेंगे नहीं। परंतु इनके प्रति हमारी जो यह भावना रहती

है कि ये बने रहें - यही बन्धन है। 'ये बने रहें' यह

मरनेका हमपर कोई असर नहीं पड़ता। हम सुन लेते हैं

कि किसी स्थानपर इतने आदमी मर गये, बस हम राम-

राम-राम—ऐसा कह देते हैं, पर हृदयपर इतनी चोट नहीं

संख्या १२] _{इ.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स}	नः हो रही है
लिये किसीके साथमें पदार्थ और व्यक्ति नहीं रहते। हम	उसी दिनसे मरना आरम्भ हो गया था। मरते–मरते उसका
भी यह जानते हैं कि ये हमारे साथ नहीं रहेंगे, फिर भी	मरना आज पूरा हो गया। जैसे वह चला गया, ऐसे ही
भावना यह रहती है कि ये हमारे साथ बने रहें। जो	सभी जानेवाले हैं। आप अपनी ओरसे जानेवालोंका साथ
पहले थे नहीं और बादमें रहेंगे नहीं, उनके रहने और	छोड़ दें। साथ छोड़नेका अर्थ यह है कि 'ये हमारे साथ
न रहनेमें हम अपना आग्रह छोड़ दें तो क्या बिगड़	सदा बने रहें' यह भावना हटा दें। यह आग्रह, यह
जायगा? दुनियाके अन्य व्यक्तियों और वस्तुओंसे हम	भावना छोड़ दें, पर वे साथ भी रहेंगे तो क्या हानि है ?
मुक्त हैं, छूटे हुए हैं, हमें उनका बन्धन नहीं है। यदि	ज्यादा चाहनेसे अधिक दिन रह जायँगे और न चाहनेसे
थोड़ी-सी वस्तुओंको भी बहुतके साथ मिला दें अर्थात्	थोड़े दिन रहेंगे, चले जायँगे, ऐसी बात तो है नहीं। जितने
इनसे आसक्ति उठा दें तो हम अभी मुक्त हो जायँ। वैसे	दिन रहना है, जितनी आयु है, उतने दिन तो वे रहेंगे ही।
विचारपूर्वक देखा जाय तो हम मुक्त हो ही रहे हैं,	पर मनमें इच्छा है कि ये अधिक दिन बने रहें। ऐसी
प्रतिदिन छूट ही रहे हैं। जिस समय हम पैदा हुए थे,	स्थितिमें वे चले जायँगे तो मनको बड़ा संताप होगा।
उस समय हमारी जितनी आयु थी, अब उतनी नहीं है।	इसलिये इनको हम मनसे पहले ही छोड़ दें तो ये चले
जीवनके बहुत-से दिन कम हो गये, मृत्यु समीप आ गयी	जायँ तो मौज और रहें तो मौज; क्योंकि हम पहलेसे ही
है। छूटनेका दिन समीप आ रहा है। वह दिन आये, उससे	यह जानते थे कि ये चले जायँगे। तो यह ज्ञान दृढ़तासे
पहले ही हम मनसे इन्हें छोड़ दें, तो निहाल हो जायँगे।	मान लें कि इनका वियोग अवश्यम्भावी है, होनेवाला ही
अपने माने हुए प्राणी-पदार्थीका वियोग अवश्यम्भावी	है। ऐसा सोच लेनेसे बड़ी शन्ति होती है, यह हमारा-
है। वियोग होगा, होगा ही नहीं, वियोग तो प्रतिक्षण हो	आपका—सबका अनुभव है।
रहा है। जैसे जिस घरमें आप रह रहे हैं और आयुके	सूर्योदय होता है तो सब लोग अपने–अपने काममें
हिसाबसे मान लें आपको साठ वर्ष रहना है, जब तीस	लग जाते हैं, प्रकाश हो जाता है, सब कुछ दीखने लग
वर्ष बीत चुके हैं तो अब आप उस घरमें साठ वर्ष तो	जाता है, पर जब सूर्यास्त हो जाता है, तब रात हो जाती
नहीं रहेंगे। अब तीस वर्ष तो पूरे हो ही गये और तीस	है। सब काम-धन्धे बन्द हो जाते हैं। दीखना बन्द हो
वर्ष ही रह जायँगे। इनमें जो वर्ष बीते हैं, वे भी एक-	जाता है। अँधेरा हो जाता है, ऐसा होनेपर भी कोई रोता
एक दिन करके बीते हैं। हम रह रहे हैं, हम जीवित	नहीं। किंतु जब कोई घरका खास आदमी मर जाता है,
हैं, जी रहे हैं—इस ओर वृत्ति रहनेसे हम मर रहे हैं,	तब कहते हैं कि 'क्या करें, हमारे घर तो अँधेरा हो
यह बात सच्ची होते हुए भी मानना बुरा लगता है। परंतु	गया।' अरे! एक आदमीके मरनेपर एक ही घरमें अँधेरा
बुरा लगे तो क्या करें? बात तो सच्ची और पक्की है;	हो गया, यह तो दीखता है; पर सूर्यास्त होनेपर सारी
क्योंकि साठ वर्ष जीनेवाला मनुष्य है और वह चालीस	दुनियामें अँधेरा हो गया, यह नहीं दीखता। कारण क्या
वर्षका हो गया, तो वह आगे साठ वर्ष जीयेगा क्या?	है ? कारण यही है कि सूर्य उगता है तो भावना यह रहती
अब तो उसके जीवनके बीस वर्ष ही रहे। इन वर्षोंमें	है कि समयपर सूर्यास्त होगा। इसलिये सूर्यके रहते–रहते
भी दिन–प्रति–दिन उसकी आयु समाप्त हो रही है।	घरका, खेतका काम जल्दी कर लो। 'यह अवश्य ही
यह शरीर तो दिन-प्रतिदिन जा रहा है, मर रहा है।	अस्त हो जायगा'—मनमें पहलेसे ही यह भावना रहनेके
एक दिन ऐसा होगा कि लोग कहेंगे—यह आज मर गया,	कारण सूर्यास्त होनेपर, अँधेरा होनेपर संताप नहीं होता।
तो वह आज नहीं मरा है, प्रत्युत जिस दिन जन्मा था,	प्रत्युत अँधेरा होनेपर हम यही कहते हैं कि दियासलाई

लाओ भैया! मोमबत्ती लाओ, प्रकाश करो, बिजली बढिया बर्ताव करो-जलाओ आदि प्रकाशके साधन करते हैं, पर रोते तो सबसे हिलमिल चालिये नदी नाव संयोग। नहीं। क्यों नहीं रोते? मनमें दुढ भावना रहती है कि जैसे नदीके उस पार जाना है, तो उसे पार करनेके यह तो होनेवाला ही था। इसलिये संतोंने कहा है कि-लिये नावमें कई लोग बैठें; परंतु पार उतरनेके बाद सब उगा सो ही आँथवे फूला सो कुम्हलाय। अपना-अपना रास्ता लेते हैं; इसी प्रकार हमलोग भी इस चिण्या देवल ढह पड़े जाया सो मर जाय॥ घरमें आकर बैठ गये हैं और फिर समय होनेपर सब अपना-अपना रास्ता लेंगे—यह सब 'नदी-नाव-संयोग'

दुनियामें बडे-बडे वृक्ष हैं, वे गिर पडते हैं और जो जन्मा है, वह मरता है, तो मरनेमें कौन-सी नयी बात

हो गयी ? परंतु उससे आशा करना, यह दु:खका कारण

है। जवान लड़केके मरनेपर बूढ़ी-बूढ़ी माइयाँ रोती हैं

और कहती हैं कि हमने ऐसा नहीं जाना था कि यह 'गलनी माटी'का है। गलनेवाली मिट्टी—छिन्न-भिन्न

होनेवाली मिट्टी नहीं रहेगी अर्थात् हमारे सामने यह

भूल नहीं हुई है? वह तो अपने समयपर गया है।

मैंने भी अपने कानोंसे गाँवमें लोगोंको कहते सुना

है—'महाराज! गलनी माटीका था!' तो पक्की माटीका कौन है? सब-के-सब तो गलनी माटीके ही हैं। ये

कबतक रहेंगे? इनके रहनेका कोई भरोसा नहीं है, पर जानेकी बात अवश्य है, ये जायँगे अवश्य, रहेंगे नहीं। इसलिये सबके साथ उत्तम-से-उत्तम और बढ़िया-से-

नरानोहाद्गेहात्

स्ववेश्मन्यारक्षा

गृहे

अब भी सावधान हो जाओ।

बालक चला जायगा. ऐसा हमने नहीं समझा था। हमने ऐसा नहीं जाना था कि जवान बेटा चला जायगा। समझा नहीं था तो भूल समझकी हुई, जानेवालेकी तो

पर्यन्तस्थे द्रविणकणमोषं

क्रियत

प्रतिदिवसमाकृष्य

कृतान्तात् किं शङ्का न हि भवति रे जागृत जनाः॥

पड़ोसके घरमें चोरी होनेकी बात सुनकर अपने घरका प्रबन्ध किया जाता है, यह उचित ही है, किन्तु

घर-घरसे प्रतिदिन मनुष्योंको पकड़कर ले जाते हुए कालसे क्या कुछ भी भय नहीं होता? अतएव हे मनुष्यो!

समझ लो कि यह नेह-सनेह टूटनेका है, यह रहनेका है ही नहीं। यह याद रखो कि यह मृत्युलोक है,

रहनेकी बात कच्ची होनेपर भी हमने कच्चीको पक्की और पक्कीको कच्ची मान लिया। इसीसे रोना पड़ता है। यह भूल तो अपनी ही की हुई है। इसलिये पहलेसे

बर्ताव करो, श्रेष्ठ बर्ताव करो।

इति

बुरा बर्ताव करोगे? थोडे दिन रहना है, इसलिये उत्तम

श्रुतवता

नयतः

मार्गोऽयमुचितः।

(शिल्हनमिश्रकृत 'शान्तिशतक'से)

है, इसलिये 'सबसे हिल-मिल चालिये।' सबसे अच्छा-से-अच्छा, उत्तम-से-उत्तम बर्ताव करो। यहाँ रहनेका कोई भरोसा नहीं है, यहाँसे जानेकी बात पक्की है।

िभाग ९४

मरनेवालोंका लोक है। यह मरणधर्माओंका संसार है।

इसमें सब-के-सब मरनेवाले ही रहते हैं। कोई भी रहनेवाला नहीं रहता। फिर आप कहाँ रह जायँगे और

कैसे रह जायँगे ? यहाँ तो सब-के-सब जानेवाले ही हैं।

इस बातको, इस भावको दृढ्तासे हृदयमें धारण कर लो

और सबसे अच्छे-से-अच्छा बर्ताव करो। क्यों किसीसे

संख्या १२] भोग और प्रसाद भोग और प्रसाद (आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय') हमारी पूजा-उपासनामें नित्यशः व्यवहृत होनेवाले जाते हैं, भगवान् शंकराचार्यने भगवद्गीताकी टीकामें 'प्रसाद' 'भोग' और 'प्रसाद' शब्दोंमें साधनाका एक गम्भीर रहस्य या प्रसन्नताका अर्थ यही 'स्वास्थ्य' (अपने स्वरूपमें स्थित अन्तर्निहित है। उपास्य-देवको भक्तिपूर्वक निवेदित किये होना) स्वीकार किया है। गये भक्ष्य, भोज्य और पेय आदि पदार्थींको नैवेद्य कहा प्रसादः प्रसन्नता—स्वास्थ्यम्। जाता है। इस 'नैवेद्य' को ही भोग या प्रसाद भी कहा जाता (गीता-शांकरभाष्य २।६४) है। आपातत: ये दोनों शब्द परस्पर पर्यायसे प्रतीत होते हैं, इसकी और अधिक व्याख्या करते हुए श्रीमधुसूदन किंतु इनके अर्थोंमें एक तात्त्विक क्रम है। जो पदार्थ हमें सरस्वतीने इसे परमात्माके साक्षात्कारकी योग्यता कहा है— अपने प्राक्तन-कर्मों (प्रारब्ध)-से प्राप्त होते हैं, वे चाहे प्रसादं प्रसन्नतां चित्तस्य स्वच्छतां परमात्मसाक्षात्-सुखरूप प्रतीत हों या दु:खरूप; शास्त्रीय दृष्टिसे 'भोग' कारयोग्यतामधिगच्छति। (गीता-मधुसूदनी टीका, वही) कहे जाते हैं। सुखरूप माने जानेवाले भोगोंकी सुखरूपता अर्थात् प्रसाद, प्रभुकी ओरसे भक्तको एक ऐसा भी एक भ्रममात्र है, वस्तुत: तो ये सभी 'दु:खयोनि' अर्थात् आश्वासन है, जहाँ समस्त दु:ख स्वयमेव तिरोहित हो दु:खप्रद ही हैं। जो विषय हमें प्रिय लगते हैं, उनकी अप्राप्ति जाते हैं—'प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।' (गीता

तथा विनाशमें दु:ख होता है और जो बुरे समझे जाते हैं, २।६५) उनका संयोग दु:खद होता है, इसलिये गीताकारने कहा है— होता है। इसीलिये प्रतीकभृता वस्तुको प्रसादके रूपमें सादर ये हि संस्पर्शजा भोगा दु:खयोनय एव ते। आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥ सिरसे लगाते हैं। मधुर तो हमें भोग भी लगते हैं, किंतु उनका

अतएव यदि इन्हें अपना मानकर सेवन करेंगे तो कष्ट ही होगा, किंतु शरीर-यात्रा तथा व्यवहारकी उपपत्ति^१के लिये स्वरूपत: इनका त्याग करना भी नितान्त असम्भव है, ऐसी दशामें इनका शोधन करनेहेतु इन्हें भगवद्भोग्य

बना देना ही समीचीन^२ मार्ग है। हमारे भोग चाहे सुखवत् प्रतीत हों या दु:खवत्, कभी हमें सच्ची प्रसन्नता नहीं दे पाते। इसका कारण है कि हमें उनके हानोपादान^३की चिन्ता स्वयं करनी पड़ती है। इस प्रकार हमारे तथाकथित 'सुख' में भी दु:खका सूक्ष्म किंतु व्यापक अनुवेध⁸ हमें स्वाभाविक

प्रसन्नतासे वंचित रखता है। जिस क्षण ये भगवदर्पित हो जाते हैं, उस समय भोग न रहकर 'प्रसाद' बन जाते हैं। प्रसादका तात्पर्य ही है—'प्रसादस्तु प्रसन्नता'।

'विषय-विष' न रहकर 'परम-स्वास्थ्यकर औषध' बन

इनका भौतिकस्वरूप तो वही रहता है, किंतु अब ये

(गीता ५। २२)

बन जायँगे।

श्यामसुन्दर स्वयं हमारे भोगोंकी तिक्तता स्वीकार

करके हमें माधुर्य वितीर्ण करते हैं और इसीलिये अपने प्रिय भक्तोंके लिये उनका यह उद्घोष भी है— यत्करोषि यदश्नासि यज्नुहोसि ददासि यत्।

यह आश्वासन परम मधुर और सर्वात्मना शिरोधार्य

यह माधुर्य प्रातिभासिक अथ च, अनित्य होता है। ये ही

जब भगवदर्पित होकर 'प्रसाद 'बनते हैं, तब उनमें वास्तविक

माधुर्यकी अभिव्यक्ति होती है-ऐसा माधुर्य जिसके एक

सीकरके लिये स्वर्गका शासक भी हाथ फैला देता है।

और फिर 'प्रसाद'। आशय यह है कि यदि हम अपने भोगोंको भगवद्भोग्य बना देंगे, तो फिर वे 'भोग्य' न

रहकर सहज प्रसन्नता और आनन्दके संवाहक 'प्रसाद'

अतएव इन शब्दोंका यही क्रम है, पहले 'भोग'

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

१. सफलता,२. उत्तम,३. त्याग और ग्रहण, ४. बार-बारकी चुभन।

(गीता ९।२७)

'अवसि चलिअ बन' [भरत-चरितका एक पावन-प्रसंग] (श्रीसंजीवकुमारजी भारद्वाज, बी०काम०, एल-एल०बी०) मानते हुए श्रीभरतजीने अनुज शत्रुघ्नकुमारके साथ गौरवशाली इक्ष्वाकृवंशीय अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट्

महाराज दशरथका श्रीरामके वियोगमें देहत्याग हो चुका राजसभामें बड़े भारी मनसे प्रवेश किया, गुरु विसष्ठ उन्हें अपने समीप बैठाकर एवं उनकी अनुपस्थितिमें

था। भरतजीने महाराजके निमित्त गुरु वसिष्ठजीकी आज्ञासे उन्हींकी देखरेखमें स्मृतियों, वेद-पुराणोंमें उल्लिखित

विधिसे दशगात्रका विधान पूर्णकर तथा भूदेव ब्राह्मणोंको

विविध प्रकारके दानसे सन्तुष्टकर, अपने सन्तति-धर्म

और सनातनधर्मके अबाध जीवन-मुल्योंका निर्वहण किया। गौरवशाली अतीत और वर्तमानको रखनेवाली

इक्ष्वाकुवंशीय अयोध्याने कुछ ही समयमें काफी उतार-चढावोंको आत्मसात् किया है। इस समय अयोध्याकी

व्यथा, चिन्ता और व्याकुलता वर्णनातीत है। कुछ ही दिवस बीते हैं, जब अयोध्या और इसके भाग्यशाली

वासियोंके जीवनधन श्रीराम वल्कल वस्त्र पहने अरण्यवासीरूपमें, पिताकी आज्ञाको शिरोधार्य करते हुए श्रीजानकी और अनुज लक्ष्मणसहित अयोध्यासे वनको

प्रस्थान कर चुके हैं। और अब महाराजकी देहका अवसान; मानो असंख्य वज्रपात एक ही समयमें हुए हैं,

इस गौरवशाली नगरीपर। प्रेममूर्ति श्रीभरतजीकी इस समयको व्यथा, आत्मग्लानि, अन्तस्का द्वन्द्व, उनका बारम्बार श्रीरामजानकीके स्नेह एवं पिताके वात्सल्यकी

स्मृतियोंको स्मरणकर भावुक हो अचेत हो जाना,

भाषाके शब्दकोशकी परिधिके सर्वथा बाहर: अकल्पनीय और वर्णनातीत है। इक्ष्वाकुवंशीय चक्रवर्ती सम्राटोंकी इस गौरवशाली

नगरी अयोध्याको इस समय अपने शासककी नितान्त आवश्यकता है। गुरुजनों, मुनियों और सभासदोंने विचार किया, तब गुरु वसिष्ठने श्रीभरतजी और शत्रुघ्नकुमारको

बुला भेजा। श्रीराम-जानकीके चरणोंका हृदयमें ध्यान करते हुए पिताके वात्सल्यकी स्मृतियोंके स्मरण-पाशसे आबद्ध,

आत्मग्लानि, अपराधबोध और अन्तस्के द्वन्द्वके मेघोंसे

अयोध्यामें घटित सम्पूर्ण घटनाक्रम बतलाकर बोले-'महाराजने धर्म और सत्यकी प्रतिष्ठाके लिये अपने प्राणोंका निसर्ग कर दिया।'

'महाराजका प्रभाव चौदह लोकोंमें प्रत्यक्ष प्रकट था, है और रहेगा।'

'धर्मनिष्ठ, सत्यनिष्ठ, कर्मनिष्ठ, शील-स्वभावके महासिन्धु, उदार हृदय, जितेन्द्रिय, प्रजापालनमें अनवरत गतिशील, शत्रुहीन, दुरद्रष्टा, अत्यन्त तेजसम्पन्न ऐसे सर्वगुणसम्पन्न हमारे महाराजके गुणोंका वर्णन-चिन्तन

करते हुए ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र और दिक्पाल कभी भी उपराम नहीं हए।' जिनके राज्यकालमें अयोध्याने वैभव, सम्मान और उत्थानकी पराकाष्ठाको प्राप्त किया, ऐसे महाराज शोक

करनेयोग्य ? कदाचित् नहीं। पुन: गुरु वसिष्ठजी श्रीरामका स्मरण करते हुए

बोले-'श्रीरामके गुण, शील, स्वभाव, जितेन्द्रियता,

न हर्ष न विषाद!

धर्मनिष्ठा, सत्यनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता, समस्त चराचरके प्रति निर्मल दयाभाव, निर्मल हृदयकी पराकाष्ठाका वर्णन वाणीसे होना सर्वथा असम्भव है।'

श्रीरामके गुणोंके विस्तारका, शील-स्वभावका, जितेन्द्रियताका, धर्मनिष्ठा, सत्यनिष्ठा, कर्तव्यपरायणताका एवं समस्त जड़-चेतनके प्रति अनन्य दयाभावका वाणी स्पर्श भी नहीं कर सकती है कभी।

िभाग ९४

लजा जाती है वह भी! न खिन्नता न प्रसन्नता! असिंक्षिपांड़म् मिंड्रिट्यूर्ट नेङ्गार्थं तिस्रों इंस्प्रेट्यू विकास सम्भित्DE WITH LOVE BY Avinash/Sha

अंग्रेजीके कवियोंपर गीताका प्रभाव (डॉ० श्रीरामशंकरजी द्विवेदी) श्रीमद्भगवद्गीता एक ऐसा शास्त्र है, जिसे यथार्थ age and climate had pondered and thus disposed रूपमें लोक-कल्याणका प्रतिपादक कहा जा सकता है। of the same questions which exercise us. इसकी लोकप्रियताका अन्दाजा इसीसे लगाया जा सकता स्वामी विवेकानन्दके कार्यमें सहयोगिनी और उनकी है कि विश्वके बुद्धिजीवियोंकी मेधाके लिये यह आज भी मित्र कुमारी जोसेफिन मेक्लॉउड जब स्वामी विवेकानन्दसे

एक चुनौती बना हुआ है। इसपर हजारों भाष्य, टीकाएँ लिखी गयीं और आज भी यह क्रम जारी है। कण्ठस्थ थी।

क्रान्तिकारी आनन्दमठके साथ-साथ गीताकी पोथी भी अपने हाथमें रखते थे। गीता युद्धका शास्त्र है,

लेकिन मानवीय मनोवृत्तियोंको साम्यमें कैसे स्थित किया जा सकता है, यह बतानेवाला आचार-शास्त्र भी है। उसमें उपनिषदोंका निचोड़ है। उसके प्रभावका आकलन

यों किया जा सकता है कि अमेरिकी दार्शनिक थोरो और इमर्सन दोनों गीतासे प्रभावित थे। थोरो कहते हैं—'हर सुबह मैं अपने हृदय और मस्तिष्कको श्रीमद्भगवद्गीताके उस अद्भुत और दैवी दर्शनसे स्नान कराता हूँ, जिसकी तुलनामें हमारा आधुनिक विश्व और उसका साहित्य

बहुत छोटा और तुच्छ जान पड़ता है'-In the morning I bathe my intellect in the stu-

pendous and cosmogonal philosphy of the Bhagavad Geeta in comparison with which our modern world and its liturature seem puny and trivial. इमर्सन कहते हैं कि 'मुझे गीताके कारण एक

भव्य दिवसकी प्राप्ति हुई। ऐसा लगा कि जैसे एक साम्राज्य हमसे बात कर रहा हो। उसमें कुछ भी छोटा अथवा बेकार नहीं था। सब कुछ विशाल, शान्त एवं

निरन्तर; एक ऐसी प्राचीन प्रज्ञाका स्वर जिसने एक अन्य युग एवं वातावरणमें उन सभी प्रश्नोंपर विचार करके निर्णय दिया, जिनपर हमारा ध्यान केन्द्रित रहता है—

I owed a magnificent day to the Bhagavad Geeta. It was as if an empire spoke to us, nothing

small or unworthy, but large, serene, consistent,

the voice of an old intelligence which in another

मिलीं, तब उन्हें मानसिक सम्पदाके रूपमें पूरी गीता

उन्होंने स्वामी विवेकानन्द-विषयक अपने संस्मरणोंमें लिखा है, एक दिन मैं श्रीमती रोथलिस-बर्जरके साथ जाकर बोली—'स्वामीजी! क्या आप मुझे बतायेंगे कि

ध्यान कैसे किया जाता है ?' उन्होंने कहा, 'एक सप्ताह तक 'ॐ' पर ध्यान करो और उसके बाद आकर मुझे

बताना।' एक सप्ताहके बाद हम फिर गये और श्रीमती रोथलिस बर्जरने कहा—'मुझे एक रोशनी दिखती है।' उन्होंने कहा, 'अच्छा है, करती रहो।' मैंने कहा, 'अरे नहीं, वह तो हृदयमें एक ज्योति-सी दिखती है। ' उन्होंने मुझसे कहा, 'करती रहो। ' बस, इतना

पहले भी ध्यान किया करती थीं और हमें गीता कण्ठस्थ थी। मुझे लगता है कि उसीने हमें उनकी प्रचण्ड जीवन-शक्तिको पहचाननेके लिये प्रस्तुत किया था। वे दूसरोंके अन्दर जिस साहसका संचार कर देते थे, सम्भवत: इसीमें

उनकी शक्तिका बोध होता था। एक और परिदृश्य है—एक दिन जोसेफिन

ही उन्होंने मुझे सिखाया था; परंतु हम उनसे मिलनेके

मेक्लाउडने भगवद्गीतापर स्वामी विवेकानन्दका भाषण सुना। इस घटनाका स्मरण करते हुए उन्होंने लिखा है, इस वक्त एक सौसे अधिक श्रोता उपस्थित थे, वे सब

कमरेमें बैठे हुए थे। जिस वक्त स्वामीजीने बोलना प्रारम्भ किया। मैंने अपनी नजर उठायी। अपनी इन

आँखोंसे, इन्हीं-इन्हीं आँखोंसे (जोसिफनने अपनी आँखोंकी ओर इशारा करते हुए कहा) देखा कि साक्षात् कृष्ण खड़े हुए हैं और गीताका उपदेश दे रहे हैं। यह मेरा

पहला अद्भुत दिव्य-दर्शन था। मैं देखती रही, देखती

अंग्रेजीके कवियोंपर गीताका प्रभाव संख्या १२] रही निर्निमेष—मुझे सिर्फ वही रूप दिखायी देता रहा, हुआ था। यह नवजागरण वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, बाकी सारे दृश्य लुप्त हो चुके थे। पुरातत्त्व आदिकी खोजके क्षेत्रमें था। विलकिन्सने गीताका भगिनी निवेदिताने भी लिखा है कि स्वामीजीसे अंग्रेजी पद्योंमें अनुवाद किया था और वह अनुवाद लन्दनमें मिलनेके पहले मुझे गीता कण्ठस्थ थी। भारतके सम्बन्धमें १७८५ में प्रकाशित हुआ था। कहना अतिशयोक्ति न होगी यही मेरी पहली जानकारी थी। कि अंग्रेजीके रोमाण्टिक कवियोंने विलकिन्सकृत गीताके 'पेंगुइन इण्डिया' दिल्लीसे 'भारतमें ईसा मसीह' अनुवादको मात्र पढा ही नहीं था, गीताके उपदेशोंने उनके नामक एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक निकली है। उसमें ऐतिहासिक मर्मको भी छू लिया और उसीकी ज्योतिसे उनकी कवितामें प्रमाणोंके आधारपर यह सिद्ध किया गया है कि भारतमें और चमक आ गयी थी। भारतमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीके आकर जीसस क्राइस्टने गीताके साथ धम्मपद पढ़ा था। पहले गवर्नर जनरल रहे वारेन हेस्टिंगने चार्ल्स विल्किन्सको इसीलिये उनके पार्वत्य प्रवचनों (Surmon on the moun-गीताका अनुवाद करनेके लिये आर्थिक सहयोग दिया था और उसके कार्यकी प्रशंसा करते हुए उसके द्वारा अनूदित tain)-पर गीताके कर्मयोगका प्रभाव है। इधर अभी हालमें एक भारतीय अनुसन्धानकर्ताने गीताकी एक प्रति ईस्ट इंडिया कम्पनीके चेयरमैनको भी यह स्पष्ट शब्दोंमें प्रतिपादित कर दिया है कि अंग्रेजी भेंट की थी। काव्यकी रोमाण्टिक धारापर भारतीय प्रभाव कुछ कम आत्मचेतनासम्पन्न बांगलाके शीर्ष कथाकार शीर्षेन्द्र नहीं था। इस अनुसन्धानमें उन्हें बीस वर्ष लगे। उनका मुखोपाध्यायने इस सम्बन्धमें अपनी टिप्पणीमें कहा है नाम डॉ॰ कृष्णगोपाल श्रीवास्तव है। उन्होंने अनुसन्धानके कि प्रोफेसर श्रीवास्तवका यह दावा खारिज करनेयोग्य बाद यह प्रमाणित किया है कि श्रीमद्भगवद्गीताके नहीं है। इसी बीच उनके इस अनुसन्धानने स्वयं प्रभावसे रोमाण्टिक युगके वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, शेली, अंग्रेजोंके देश ब्रिटेनमें हलचल मचा दी है। इस सन्दर्भमें कीट्स, बॉयरन और वाल्टर स्कॉट-जैसे प्रमुख कवि बी०बी०सी० लन्दनने डॉ० श्रीवास्तवका एक साक्षात्कार गहरे रूपमें प्रभावित थे। उनकी कवितापर इस महान् भी प्रसारित किया था। ग्रन्थका स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। डॉ० कृष्णगोपाल श्रीवास्तव ग्लासगो विश्वविद्यालयमें श्रीमद्भगवद्गीताके अनुशीलनसे इन कवियोंने जीवन अतिथि प्राध्यापक हैं। गीताके सम्बन्धमें लिखे गये उनके लेख सौन्दर्य-शास्त्रकी ब्रिटिश पत्रिका 'एक्सप्लिकेट'में और आत्मा-सम्बन्धी जिन मूल्योंको अपनाया था, वे हैं पुनर्जन्म, कर्मका सिद्धान्त, जगत्की सत्ता, आत्म-नियमित रूपसे प्रकाशित होते रहते हैं। ब्रिटेन और अमेरिकाकी तत्त्वकी अमरता, अवतारवाद इत्यादि। इन मृल्योंने ही अन्य पत्र-पत्रिकाओंमें भी वे लिखते रहते हैं। इसी कारण रोमाण्टिक कवियोंको विशेष रूपसे मोहित किया था। मैकमिलन इण्डियासे प्रकाशित उनका ग्रन्थ 'भगवद्गीता उनकी कविताओंमें बहुतसे अंश अत्यन्त दुर्बोध और एण्ड दि इंग्लिश रोमाण्टिक मुवमेण्ट' पाठकोंको विशेष मन, बुद्धिकी समझसे परे हैं। यदि उनपर गीताके रूपसे आकर्षित कर रहा है। प्रकाशमें विचार किया जाय, तो वे एकदम स्पष्टरूपसे पर, यह तो हुई विदेशोंमें गीताके प्रभावकी बात, उद्भासित हो उठते हैं। वहाँ हलचल मचानेकी बात, अपने देशमें उसका प्रभाव कहाँ है ? 'गीता तो अपनी ही थाती है' ऐसा माननेवाले अठारहवीं शताब्दीमें प्राच्यविद् चार्ल्स विलिकन्स, सर विलियम जोन्स आदिने भारत-विद्याकी जो खोज की भारतके कवि और लेखकोंको भी गीतासे सतत प्रेरणा थी, उसीके परिणामस्वरूप प्राच्य देशमें नवजागरणका सूत्रपात लेते रहना कल्याणकारी होगा।

प्रलय नहीं, लयके देवता हैं भैरवजी

िभाग ९४

उठती है। श्रीलक्ष्मी प्रसन्न होती हैं और उनकी ज्येष्ठा

बहन दरिद्रलक्ष्मी भागती हैं। श्रीसुक्तमें जिस दरिद्रलक्ष्मीसे

मुक्तिकी कामना की गयी है, वह इस रागमें गायनसे

सहज सम्भव है। इसी प्रकार मालकोस रागसे पत्थर

पिघलकर मोम-जैसे हो जाते हैं। जीवके हृदयको

पाषाणवत् होनेसे बचानेमें यह राग सहायक है। इसके

अलावा मेघरागसे वर्षा, हिण्डोलरागसे झुला अपने-आप

झुलने लगता है, बिना बैलोंके कोल्हू चलने लगते हैं, इन राग भैरवकी छ: रागिनियाँ हैं। इन छहों रागिनियोंके

छ:-छ: पुत्र भी हैं। वैसे तो इनके वंश-विस्तारकी

अनन्त सीमा है, लेकिन संगीत-विशेषज्ञ ४३६ राग-रागिनियोंमें साधना करते हैं। सिद्ध संगीतज्ञोंने अनिद्रा,

अवसाद, तनावसहित अन्यान्य शारीरिक एवं मानसिक बीमारियोंमें इसका सफल प्रयोग किया है। रागभैरवके

अति लोकप्रिय गीत 'जागो मोहन प्यारे''' में भगवानुके

सामने ग्वाल-बाल और भूपति सब खड़े होकर कृपाकी

कामना कर रहे हैं। निहितार्थ तो यही निकलता है कि

यह गीत समाजमें समानता, आपसी सद्भाव, 'वसुधैव

कुटुम्बकम् 'का भाव पैदा करनेके लिये गाया जाता है।

बीज बोनेमें सहायक है। भगवान् विष्णुसे जब नारदजीने

पूछा कि आप रहते कहाँ हैं, तो उत्तरमें भगवान् विष्णुने कहा—'नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।

मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद'॥ यहाँ

गायनकी महत्ता दर्शानेके लिये 'गायन्ति 'का प्रयोग किया है, ध्यायन्ति या जपन्तिका प्रयोग नहीं किया। इस प्रकार

इस रागमें सृष्टिमोहनीसे ब्रह्मा, विश्वमोहिनीसे विष्णु

गीत-संगीत व्यक्तिमें सकारात्मक भाव एवं संस्कारके

(श्रीसलिलजी पाण्डेय)

विर्माखिमांशाक्रिके क्षाप्त्रा क्षाप्त्रा क्षाप्त्रा क्षाप्त्रा क्षाप्त्र स्वयंत्रा विर्माखिक स्वयंत्र कि स्वयंत्

देवाधिदेव महादेवके आज्ञाचक्र (भौंहोंके मध्य)-जा सकता है। कल-कल करती भागीरथी गंगाकी

से प्रकट भैरवजीका अवतरण प्रलयको रोककर लहरोंसे भैरवको गायन, वादन और नृत्यका बोध होनेका

हुआ

लयात्मकताको बनाये रखनेके लिये अनुमान इसलिये लगाना सहज है कि संगीतका आदि

शिवमहापुराणकी विद्येश्वर-संहितामें आयी कथाके अनुसार

राग भैरव और भैरवियाँ हैं। भैरव रागमें राग भैरवसे शिव

प्रसन्न होते हैं तो श्रीरागसे देवी-शक्तियाँ। श्रीरागमें

सृष्टिके ध्वंसकी स्थिति उत्पन्न होनेपर महादेवजीको

कुछ कठोर निर्णय लेने पड़े। सृष्टिकी रचना करके गायनसे सूखते पेड़ हरे हो जाते हैं। प्रकृति खिलखिला

ब्रह्माजीने चारों दिशाओंको देखा। ब्रह्मा चतुर्मुखी हो

गये। उन्हें खुदपर अभिमान हो गया। वैकुण्ठकी ओर

नजर दौड़ायी तो पंचमुखी हुए। उन्होंने पालनकर्ता

विष्णुजीको चुनौती दे दी कि ब्रह्माण्डमें वे सबसे बड़े

हैं। यहाँतक कि विष्णुको 'पुत्र' शब्दसे सम्बोधित

किया। सृजनकर्ताकी चुनौती पालनकर्ताको नागवार

गुजरी और कलहको महाप्रलयतक पहुँचते देख प्रलयके

देवता महादेवको आना पड़ा। ब्रह्माके अहंकारसे क्षुब्ध

महादेव रुद्रका पद त्याग रौद्र हो गये। रुत+द्रावयतिसे वे रुद्र होते हैं। यानी दुखोंका निवारण करते हैं, लेकिन

रौद्र होनेपर संहार करते हैं। लिहाजा उनकी भौंहोंके

बीचसे एक तेज प्रकट हुआ, जिससे ब्रह्माके अहंकारी मुख (कपाल)-का संहार हो गया और वे पाँचवें मुखसे

हाथ धो बैठे। इसी संहारकर्ता तेजका नाम भैरव पडा।

अब एक विषम समस्या उत्पन्न हो गयी। ब्रह्माके इस कपालको काटनेका दण्ड तो भैरवको झेलना ही था,

इसलिये महादेवने खुदसे बसाई अपनी अविमुक्त नगरी

काशीमें ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करनेके लिये भैरवको

भेज दिया। ब्रह्महत्या भैरवका पीछा करते काशीतक

आयी, लेकिन महादेवके त्रिशूलपर बसी काशीमें भीषण

संगीत-साधना प्रतीत होती है। ब्रह्मा वेदके रचयिता होनेके नाते गीतलेखक होते हैं, तो महादेव नादके देवता

तथा विष्णु नृत्यके देवता। काशी भगवान् विष्णुको भी

बड़ी प्रिय नगरी लगती है। स्कन्दपुराणके काशीखण्डके पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध दोनों खण्डोंमें काशीनगरीके वैशिष्ट्यमें

इस ब्रह्महत्याके दोषसे मुक्तिके पीछे भैरवकी

साधनाकर भैरव ब्रह्महत्याके दोषसे मुक्त हो गये।

शिवपुराणकी एक कथाके अनुसार भगवान् शंकरके शीतलता देनेवाले चन्द्रमाकी प्रकृतिके और रुद्रभैरव विनोदभावमें 'काली' कहनेसे दुखी माता पार्वती अग्नितत्त्वको बढानेका प्रतिनिधित्व करते प्रतीत होते हैं। आदिपर्वतशिखर विन्ध्यपर्वतपर तपस्या करने आयीं, तो ८ इस प्रकार ब्रह्माका कपाल लेकर काशी आये भैरव भैरव एवं ५ भैरवियाँ उनकी सुरक्षामें आयीं। जिसमें महाभैरव, सहज, सरल एवं शरीरमें बिगड़ते लयको संतुलित करनेवाले संहारभैरव, रुद्रभैरव, कालभैरव, क्रोधभैरव, ताम्रचुड भैरव देवता हैं। स्पष्ट है, शरीरके लयमें व्यवधानसे व्यक्ति बीमार और चन्द्रचूड़ भैरवके साथ त्रिपुरभैरवी, कौलेशभैरवी, होता है और चिन्तनमें नकारात्मकता आती है। सदाचार रुद्रभैरवी. नित्या भैरवी और चैतन्य भैरवियाँ थीं। शास्त्रकारोंके एवं सद्भणके मरते ही व्यक्तिका शरीर श्मशानके रूपमें हो अनुसार कुल ६४ भैरव और इतनी ही भैरवियाँ हैं। इनके जाता है। शाश्वत सच्चाई मृत्यु ही है। अत: 'जीवेम शरद: शतम्' के मार्गपर चलनेके लिये लयके देवताकी उपासना नामके अनुसार इनकी प्रकृतिमें अन्तर है। ताम्रभैरव जहाँ लालिमायुक्त हैं, तो चन्द्रचुड भैरव महादेवके मस्तकपर मार्गशीर्ष माहकी कृष्ण अष्टमीको अवश्य करनी चाहिये। सनत्कुमारकथित श्रीकालभैरवाष्टक सकलकलुषहारी धूर्तदुष्टान्तकारी रुचिरचरितचारी मुण्डमौञ्जीप्रचारी। **(** 0 करकलितकपाली कुण्डली दण्डपाणिः स भवतु सुखकारी भैरवो भावहारी॥१॥ (1) **(** विविधरासविलासविलासितं नववधूरवधूतपराक्रमम्। 0 0 मदविघुणितगोष्पदगोष्पदं स्मरे॥ २॥ भवपदं सततं 0 सततं 0 0 अमलकमलनेत्रं चारुचन्द्रावतंसं सकलगुणगरिष्ठं कामिनीकामरूपम्। 0 0 0 परिहृतपरितापं डाकिनीनाशहेतुं भज जन शिवरूपं भैरवं भूतनाथम्॥३॥ 0 0 सबलबलविघातं क्षेत्रपालैकपालं विकटकटिकरालं ह्यट्टहासं विशालम्। 0 0 करगतकरवालं नागयज्ञोपवीतं भज जन शिवरूपं भैरवं भृतनाथम्॥४॥ 0 0 सकलसुरगणेशं चारुचन्द्रार्कनेत्रम्। भवभयपरिहारं योगिनीत्रासकारं 0 0 मुकुटरुचिरभालं मुक्तमालं विशालं भज जन शिवरूपं भैरवं भूतनाथम्॥५॥ 0 **(1)** चतुर्भुजं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्। शङ्खगदाधरायुधं 0 0 गलशोभिकौस्तुभं शीलप्रदं शङ्कररक्षणं श्रीवत्सलक्ष्मं 0 0 भुवनाभिरामं प्रियाभिरामं लोकाभिरामं यशसाभिरामम्। 0 0 कीर्त्याभिरामं तपसाऽभिरामं तं भूतनाथं शरणं प्रपद्ये॥ ७॥ 0 0 शुचिपरं सिद्धिप्रदं कामदं आद्यं सनातनं ब्रह्म 0 0 भक्तिसमन्वितं हरिहरै: सृष्ट्यासहं साधुभि:। सेव्यं 0 0 युगधरं योगविचारितं योग्याननं योग्यं 0 0 भैरवम् ॥ ८ ॥ सकलं सत्सेवितं कलङ्करहितं 0 0 वन्देऽहं प्रातःकाले पठेन्नरः । दुःस्वप्ननाशनं तस्य वाञ्छितार्थफलं भवेत्।। ९ ॥ **(** पुण्यं भैरवाष्टकमिदं 0 च सङ्ग्रामे सङ्कटे तथा । राज्ञा कुद्धेन चाऽऽज्ञप्ते शत्रुबन्धगते तथा॥१०॥ समाहितै: । न तेषां जायते किञ्चिद् दुर्लभं भुवि वाञ्छितम् ॥ ११ ॥ **(** पठितव्यं दारिद्र्यदु:खनाशाय ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे अवन्तीखण्डे सनत्कुमारकथितं कालभैरवाष्टकं सम्पूर्णम्॥

सनत्कमारकथित श्रीकालभैरवाष्टक

संख्या १२]

श्रीमद्भगवद्गीताका कर्मयोग

(श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला) कर्मयोगमें दो शब्द हैं-कर्म एवं योग। अब क्या है। कर्म कर्मयोग तब होता है, जब हम बिना

देखना है कि कर्म क्या है, योग क्या है तथा कर्मयोग फलकी आकांक्षाके कर्म करते हैं। क्या है। कर्म और क्रियामें भेद है। हम चलते हैं, काम कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। करते हैं—ये सब हमारे कर्म हैं, लेकिन क्रिया कब होगी, मा कर्मफलहेतुर्भूमां ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥

जब कर्म तो होता है, लेकिन हम उसके कर्ता नहीं होते।

यह बड़ा अजीब-सा लगता है कि हम कर्म करके भी उसके कर्ता नहीं। आप देखें आपका श्वास चलता है,

आपकी पलकें गिरती-उठती हैं, आपके शरीरमें खूनका

संचार होता है। क्या इन तीनों कर्मोंके हम कर्ता हैं, निश्चय ही हम नहीं हैं, फिर भी वे कर्म होते हैं अर्थात्

ये सब हमारी स्वाभाविक क्रियाएँ हैं। अर्थात् जिस कर्मके हम कर्ता नहीं रहेंगे फिर भी हो रहा है तो वे कर्म हमारी क्रिया हो जायगी। इसी प्रकार जब क्रियामें

कर्तापनका बोध नहीं हुआ तो वह कर्म हो जायगा। अब हम योगकी व्याख्या करेंगे। महर्षि पतंजलिने योगके बारेमें कहा—'योगः

चित्तवृत्तिनिरोधः ' अर्थात् चित्तकी वृत्तियोंका निरोध अर्थात् उन्हें वशमें करना ही योग है, गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं 'जब हम कुशलतापूर्वक कर्म करते हैं तो योग सिद्ध होता है, योग: कर्मस् कौशलम्',

अन्यत्र कहते हैं—'समत्वं योग उच्यते।' 'समत्वं योग उच्यते' का अर्थ हुआ आसक्तिको त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धिवाला होकर कर्तव्य-

कर्मोंको करना, यह समत्व ही योग कहलाता है। **'योगः कर्मसु कौशलम्'** में यह दिखलाया गया है कि कर्म स्वाभाविक ही मनुष्यको बन्धनमें डालनेवाले

होते हैं और बिना कर्म किये कोई मनुष्य रह नहीं सकता, ऐसी परिस्थितिमें कर्मोंके प्रभावसे छूटनेकी सबसे अच्छी युक्ति समत्व योग है। इसलिये समत्व योग अपनाते हुए

इस प्रकार हमने कर्म एवं योगकी व्याख्या अलग-

अलग कर दी। अब हमें देखना है कि गीताका कर्मयोग

कर्म करना ही कर्मींमें कुशलता है।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः। स संन्यासी च योगी च न निरग्निन चाक्रिय:॥

करता।

जो पुरुष कर्मफलका आश्रय न लेकर करनेयोग्य

कर्म करता है, वह संन्यासी तथा योगी है और केवल अग्निका त्याग करनेवाला तथा क्रियाओंका त्याग करनेवाला

योगी नहीं है। अतएव वर्ण और आश्रमके अनुसार शास्त्रविहित कर्मोंमें फल और आसक्तिका भी त्याग

अर्थात् हे अर्जुन! तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार

है, उसके फलोंमें नहीं। इसलिये तू कर्मींके फलका हेत्

मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो। प्राय:

लोगोंकी कर्ममें प्रवृत्ति फलके लिये ही होती है। अगर

फलका त्याग कर देगा तो ऐसा न हो कि कर्म ही न

करे। इसका और स्पष्टीकरण करते हुए भगवान्

श्रीकृष्णने कहा—'हे धनंजय! तू आसक्तिको त्यागकर

तथा सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धिवाला होकर

योगमें स्थित होकर कर्मोंको कर। ऐसा समत्व भाव ही

योग कहलाता है। इस प्रकार कर्मफलके त्यागसे भी

आसक्ति, स्पृहा, वासना, ममताका त्याग समझ लेना

चाहिये। जो पुरुष समस्त कर्मी और उसके फलमें

आसक्तिका सर्वथा त्याग करके संसारके आश्रयसे रहित

हो गया है और परमात्मामें नित्य तृप्त है, वह कर्मोंमें

भलीभाँति बरतता हुआ भी वास्तवमें कुछ भी नहीं

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः।

कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः॥

पुन: भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-

िभाग ९४

करता है, उसीको कर्मयोगी कहते हैं। इसको और अधिक विस्तार देते हुए श्रीभगवान् कहते हैं-

संख्या १२] श्रीमद्भगवद्गीत	गका कर्मयोग २५
*****************************	******************************
विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।	श्रीकृष्ण यह उपदेश देते हैं कि शरीर है तो कर्म होंगे ही,
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्॥	लेकिन कर्मोंको इस ढंगसे किया जाय, कि कर्म करते हुए
जो अकुशल कर्मसे द्वेष नहीं करता और कुशल	भी हम कर्मबन्धनमें न बँधें, यही कर्मयोग है।
कर्ममें आसक्त नहीं होता, जो आदमी कठिन कामसे कतराता	भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कर्मयोग करनेके लिये
नहीं और पसन्दीदा काममें फँसता नहीं, नेकनीयती रखता	कई तरहके दृष्टिकोण दिये हैं। इनमें पहला है—
है, ऐसा आदमी बुद्धिमान् और त्यागी है। वास्तवमें कर्मोंकी	आसक्तिका त्याग। संगोऽस्त्वकर्मणि, यानी कर्ममें
क्रिया मनुष्यको नहीं बाँधती। फलकी इच्छा और आसक्तिसे	हमारी आसक्ति नहीं होगी तो कर्म हमें नहीं बाँधेगा।
ही उसका बन्धन होता है। फल और आसक्ति न हो तो	श्रीरामकृष्ण परमहंस कहा करते थे—हाथोंसे कटहल
कर्म मनुष्यको बाँध नहीं सकता।	काटना है तो सरसोंका तेल लगाकर काटो। तेल लगाकर
कर्मबन्धन एवं कर्मोंकी शृंखला इतनी जटिल है	काटोगे तो काटते समय हाथोंमें चिपकेगा नहीं, अन्यथा
कि इनसे पार पाना कठिन है। इस संसारमें अगर जीव	बिना तेलके यह चिपक जायगा। अनासक्तिरूपी तेलसे
आया है तो वह कर्म करेगा, ऐसा सम्भव ही नहीं है	भी कर्म चिपकेगा नहीं, इसलिये आसक्तिका त्याग करो।
कि उससे कर्म न हो। इस तरह जो भी कर्म होगा, उसके	कर्मयोगका दूसरा आयाम है—राग-द्वेषका त्याग।
साथ पाप या पुण्योंकी शृंखला जुड़ी होगी और	राग-द्वेषको क्षीण करके जो कर्म किया जायगा, वह कर्मयोग
समयानुसार उसका फल भी मिलेगा। इस शृंखलासे कैसे	है। कर्मयोगका तीसरा आयाम है—कर्तापनका त्याग।
बाहर निकला जाय, कैसे मुक्ति पायी जाय—इसपर	क्रियाका परिणाम नहीं होता, कर्मका परिणाम होता है।
ऋषि–मुनियोंने अनेक तरहसे चिन्तन–मनन करके अनेकों	कर्तापनका त्याग ही हमें कर्मयोगी बनाता है। कर्मयोगका
समाधान दिये हैं, लेकिन श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्	चौथा आयाम है—समत्व। गीतामें योगको परिभाषित करते
श्रीकृष्णने सम्भवतया पहली बार कर्मयोगकी इतनी	हुए कहा गया है—समत्वं योग उच्यते। अर्थात् समता
सुन्दर, इतनी व्यापक व्याख्या की है, जो अन्यत्र किसी	ही योग है। इस तरह समतामें स्थित होकर जो कर्म किये
शास्त्रमें प्रयत्न करनेपर भी देखनेको नहीं मिलती।	जाते हैं, वे कर्मयोग हैं और वे बन्धनका कारण नहीं बन
कर्म हमें बाँधता है, कर्मकी अविराम शृंखला है,	पाते। कर्मयोगका पाँचवाँ आयाम है— कर्मसु कौशलम्,
यह सर्वविदित है। जो कर्म हम करते हैं, उनका परिणाम	यानी कुशलतापूर्वक कर्मका आचरण। भगवान् श्रीकृष्ण
भोगनेके लिये हमें विवश होना पड़ता है। काल हमारे	कहते हैं—योग: कर्मसु कौशलम्, कर्मको कुशलतापूर्वक
सामने परिणामोंको रखता है, परिणाम शुभ हों या अशुभ	करना योग है। इसलिये कर्ममें कुशलता लाना हमें सीखना
हों, लेकिन हमें उन्हें भोगनेके लिये विवश होना पड़ता	चाहिये। कर्म तो हम करें, लेकिन बँधें नहीं। यह जो
है। एक कर्म और फिर उसका परिणाम, फिर दूसरा कर्म	कर्मकी कुशलता है, इसके द्वारा कर्म करते हुए हम मुक्त
और उसका परिणाम, इस तरह कर्मोंकी यह शृंखला	रहते हैं-मुक्तसंगः समाचर। सम आचरण करते हुए,
जन्म-जन्मान्तरोंतक जारी रहती है, फिर ऐसा क्या हो	असंग हो करके, अनासक्त हो करके कर्म करें, यही कर्ममें
कि कर्मबन्धनसे हमारी मुक्ति सम्भव हो जाय।	कुशलता है, कर्मयोग है।
भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें इसका उपाय बताते हैं—	अत: जीवनका ध्येय यह होना चाहिये कि मेरा कर्म
कर्मयोग एवं कर्मयोगी-जैसा जीवन।गीतामें 'स्वल्पमप्यस्य	ही कर्मयोग हो जाय अर्थात् बिना फलकी आकांक्षाके
धर्मस्य त्रायते महतो भयात्' (२।४०)—ऐसा कहते	कर्म करना। वस्तुत: फल मिलना तो निश्चित है ही और
हुए वे व्याख्या करते हैं कि थोड़ा-सा भी इस धर्ममार्गका	जब फल मिलना निश्चित है ही, तो उसकी आकांक्षा क्यों
आचरण हमें जीवन-मरणके महान् भयसे त्राण दे देता है।	की जाय?
	>+-

सत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे) 🕯 आज इस युगमें भी सन्तोंकी महिमा है, सन्तोंसे हैं, वे ही सन्त हैं। तन, मन, धनसे उपकार करनेवाले भारत भारत है। पश्-पक्षियोंमें भी सन्त होते हैं। गृहस्थजन महान् हैं। मनकी शुद्धि और लोगोंके साथ पूर्वजन्मके प्रभाववश उनमें शान्ति एवं सन्तोष रहता है। व्यवहार शुद्ध होनेसे लोक-परलोकमें पूर्ण निर्भयता प्राप्त कहीं एक स्थानपर भागवतकी कथा आरम्भ हुई, एक होती है। सन्तोंके ऐसे स्वभाव होते हैं। सर्प आया, लोग डरे, पण्डितजीने निर्भय होकर बैठनेको 🕯 जीव अपने कर्मोंके अधीन सुख-दु:खका भोग कहा। सात दिनतक नित्य चौकीके नीचे बैठकर सर्पने करता है। यह सामान्य नियम है। विशेष शरणागत भक्त कथा सुनी, कथा समाप्त हुई, साँप मर गया। अनुमानसे प्रभुकृपाके अधीन रहते हैं। प्रभुकी इच्छामें सन्तुष्ट रहते जाना गया कि वह पूर्वजन्मका सन्त था, क्रोधावेशमें हैं। प्रभु जैसे रखें, उसी प्रकार रहनेमें सुखी रहते हैं। संसारी सम्पत्तिके संग्रहमें अति प्रयास नहीं करते हैं, जो

कहा। सात दिनतक नित्य चौकीके नीचे बैठकर सर्पने कथा सुनी, कथा समाप्त हुई, साँप मर गया। अनुमानसे जाना गया कि वह पूर्वजन्मका सन्त था, क्रोधावेशमें शरीर त्यागनेसे सर्पयोनि मिली, पर भजनका प्रभाव था, अतः अन्तमें सद्गति पायी। पण्डितजीने कहा—'एक बन्दर था, वह निडर होकर मेरी गोदीमें बैठता, छेड़नेपर भी किसीको काटता नहीं था। गिरिराजजीकी तलहटीमें उसने शरीर छोड़ा। साँप और बन्दर अपनी मौत मरते नहीं देखे जाते हैं। अन्तमें वायुमय शरीर होनेसे आकाशमें उड़ जाते हैं, पर दुर्घटना या किसीके द्वारा मारे जानेपर उन साँप-बन्दरोंके मृतक शरीर मिलते हैं। वृद्ध होकर मरते नहीं दीखते हैं, पर उक्त साँप और बन्दरने शरीर त्यागा, अतः विलक्षण जीव थे।

क्ष सन्त वे हैं, जिनमें अहंकार, दम्भ, क्रोध, लोभ आदि नहीं है। जो अपनी पूजा नहीं चाहते, जिनका आचरण पवित्र है, ऐसे सन्तोंसे वर्तमानमें सम्पर्क, सम्बन्ध, सत्संग

जानेपर उन साँप-बन्दरोंके मृतक शरीर मिलते हैं। वृद्ध होकर मरते नहीं दीखते हैं, पर उक्त साँप और बन्दरने शरीर त्यागा, अत: विलक्षण जीव थे। श्र सन्त वे हैं, जिनमें अहंकार, दम्भ, क्रोध, लोभ आदि नहीं है। जो अपनी पूजा नहीं चाहते, जिनका आचरण पित्र है, ऐसे सन्तोंसे वर्तमानमें सम्पर्क, सम्बन्ध, सत्संग करना चाहिये। यदि वे भगवद् धाम चले गये हैं, तो उनका स्मरण करके उन्हें नमस्कार करना चाहिये। इससे मनमें शान्ति होती है। प्रभुकी ओर झुकाव होता है। श्र सत्संगका लाभ मिलता है तो मनमें धीरे-धीरे शान्ति आती है, अन्यथा प्रत्येक प्राणी तन, मन, धन और जनसे दुखी दिखायी पड़ता है। संसारके सारे कार्य किसीके अनुकूल नहीं होते हैं। एक-न-एक प्रतिकूलता रहती है। अपने इष्टदेवमें दृढ़ विश्वास रखनेवाला जो शरणमें है और जो सन्मुख है, वही निश्चिन्त और सुखी है। सत्य, दया, क्षमा, अस्तेय (चोरी न करना) आदि धर्म सभी वर्णोंके धर्म हैं, अत: उक्त कर्तव्योंका पालन करना मानव धर्म है। जो दूसरोंके व्यवहारसे परेशान नहीं

करते हैं। ऐसे सन्त वाणीसे उपदेश न भी दें तो उनका आचरण उपदेश बन जाता है। उनका शरीर जबतक रहता है, वायुमण्डल शुद्ध होता रहता है, शरीर न रहनेपर भी प्रजामें उनकी चर्चा होती रहती है, उसे सुनकर लोग लाभान्वित होते हैं।

श्र भगवान्का जैसा स्वभाव होता है, वैसा ही स्वभाव भगवान्के भक्तका हो जाता है। भगवान्का चिन्तन करते-करते हृदयमें भगवान् विराज जाते हैं। तब भगवान्केसे गुण और भगवान्का सामर्थ्य भक्तमें आ

जाता है। भगवान् और भक्त दोनों एकरूप हो जाते हैं।

कुछ प्रभुकृपासे प्राप्त हो जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहते हैं।

शरीरमें कोई कष्ट आ जाय तो सुखपूर्वक उसे सहन करते हैं। ऐसे सन्त लोकमें अपनी ख्याति नहीं चाहते

हैं। लोकमान्यता अग्निके समान है, जो तपस्यारूपी

वनको जला देती है। बिना चाहे प्रभू-इच्छासे जो

सम्मान-अपमान मिलता है, उससे विश्वका कल्याण

शान्ति आती है, अन्यथा प्रत्येक प्राणी तन, मन, धन और किसी भी जीवका आदर भगवान्की भिक्त है। किसी भी जनसे दुखी दिखायी पड़ता है। संसारके सारे कार्य जीवका अपमान भगवान्का अपमान है। इसिलये जीवोंपर किसीके अनुकूल नहीं होते हैं। एक-न-एक प्रतिकूलता दया, भगवान्के नामोंमें प्रेम और वैष्णवोंकी सेवा, उनके रहती है। अपने इष्टदेवमें दृढ़ विश्वास रखनेवाला जो साथ सत्संग करना ही वैष्णवोंका सर्वश्रेष्ठ धर्म है। वर्ण शरणमें है और जो सन्मुख है, वही निश्चिन्त और सुखी और आश्रमोंके धर्म इसीमें आ जाते हैं। घरके हों या है। सत्य, दया, क्षमा, अस्तेय (चोरी न करना) आदि बाहरके हों—सबके प्रति सद्भाव बनाये रखना चाहिये। धर्म सभी वर्णोंके धर्म हैं, अतः उक्त कर्तव्योंका पालन इससे अपने मनमें सदा शान्ति बनी रहेगी। सभीका करना मानव धर्म है। जो दूसरोंके व्यवहारसे परेशान नहीं कल्याण हो, सभी सुखी-सम्पन्न हों। होने।अधि।असन्ते अस्ति स्वाप्ति करमा सिक्त स्वाप्ति सिक्त स्वाप्ति कल्याण हो, सभी सुखी-सम्पन्न हों।

जीव क्या है और माया क्या है? (श्रीरणविजयसिंहजी) जीव और मायाके बारेमें श्रीरामचरितमानसके वह मुट्ठी नहीं निकलती है; क्योंकि वह मुट्ठी घड़ेमें अरण्यकाण्डमें एक प्रसंग आया है कि जब भगवान् फँस गयी है यानी वह चनेकी मायामें फँस गया है। जीव श्रीरामजी, लक्ष्मणजी एवं सीताजीके साथ चौदह वर्षके जोकि ईश्वरका अंश है। उसके विषयमें श्रीरामचरितमानसमें

आया है कि—

जीव क्या है और माया क्या है ?

पिताके मित्र गृधराज जटायुसे भेंट हुई। उनके परामर्शसे प्रभु पर्णकुटी बनाकर वहीं गोदावरीके किनारे रहने लगे। तब एक दिनकी बात है, प्रभु श्रीराम सुखसे बैठे थे। उस समय लक्ष्मणजीने उनसे माया और जीवके विषयमें एक सच्चे जिज्ञासुकी भाँति छलहीन प्रश्न किया— एक बार प्रभु सुख आसीना। लिछमन बचन कहे छलहीना॥

जातें होइ चरन रित सोक मोह भ्रम जाइ॥ (रा०च०मा० ३।१४।५, ३।१४) लक्ष्मणजीने प्रेमसे पूछा कि-हे प्रभो! जीव क्या है ? माया क्या है ? प्रभु श्रीरामजीने समझाकर कहा कि—हे तात! मैं थोड़ेमें ही समझाकर कहे देता हूँ, तुम

ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहाँ समुझाइ।

वनवासके लिये दण्डकारण्यमें आये तो वहाँ उनकी

संख्या १२]

मन, चित्त और बुद्धि लगाकर सुनो। मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया॥ गो गोचर जहँ लगि मन जाइ। सो सब माया जानेहु भाई॥

इन्द्रियोंके विषयोंकी ओर जहाँतक मन जाता है, वह सब माया है। जीवको मायाने ऐसा फँसा रखा है यानी जीवको बन्धक बना रखा है और जीवके साथ ग्रन्थि डाल रखी है, जो बहुत ही मुश्किलसे खुलेगी और तब जीव स्वतन्त्र हो पायेगा और इसी बन्धनकी वजहसे

जीव जन्म-मरणसे छुटकारा नहीं पाता। यह माया प्रभुजीकी दासी है और वे जैसे नचाते हैं, वैसे ही यह नाचती है। मायाको जिसने पकड लिया या

मायाने जिसे पकड़ लिया, उसे न वह व्यक्ति / जीव छोड़

पाता है न ही माया ही छोड पाती है। यह जीव मायाके वशीभूत हो गया है, जैसे बन्दर घड़ेमें चना देखकर उसे

लेता है, पर जब वह मुट्ठी बाहर निकालना चाहता है तो

(रा०च०मा० ३।१५।२-३)

लेनेके लिये उसमें अपना हाथ डाल देता है और मुट्ठी भर

चरणोंमें लगे रहना चाहिये।

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण, मन आदिके साथ अपनी एकता मानकर

वह जीव हो गया है। उसका वह जीवपना बनावटी है,

वास्तविक नहीं। प्रभुजी जीवके साथ आत्मीयता रखते हैं;

क्योंकि जीवको अपना ही अंश मानते हैं। वे कहते हैं कि

जीव मेरा ही अंश है, इसमें प्रकृतिका थोड़ा भी अंश नहीं

है, जैसे सिंहका बच्चा भेडोंमें मिलकर अपनेको भेड मान

ले, वैसे जीव शरीर आदिसे मिलकर अपने चेतनरूपको

भूल जाता है। यह जीव या परमात्मा बदलते नहीं हैं, पर यह शरीर बदलता रहता है। बचपनमें कुछ और, जवानीमें

कुछ और, बुढ़ापेमें कुछ और, पर जीव ज्यों-का-त्यों

रहता है। अत: साधकको कभी भी यह नहीं सोचना चाहिये

कि जीव भी बदलता है, अपनेको प्रभुजीका मानकर प्रभुजीके

गीतामें श्रीभगवान्के मुखारविन्दसे कहा गया है—

आत्मा परमात्माका अंश है। परंतु प्रकृतिके कार्य

(गीता १५।७)

भगवान्ने न तो जीवका त्याग ही किया, न कभी जीवसे विमुख ही हुए। जीव कहीं भी क्यों न हो, नरकमें अथवा

यह जीव सदा ही भगवानुका है यानी 'सनातन'

स्वर्गमें, मनुष्ययोनिमें अथवा पशुयोनिमें, प्रभुजी उसे अपना ही अंश मानते हैं। मनुष्य चाहे किसी भी स्थितिमें क्यों न

हो, भगवान् उसे वहाँ स्थिर नहीं रहने देते, उसे अपनी ओर खींचते ही रहते हैं; क्योंकि मनुष्य और जीव ईश्वरका अंश है।

जीव जितना ही नाशवान् पदार्थोंको महत्त्व देता है, उतना ही वह पतनकी तरफ जाता है और जितना ही अविनाशी प्रभुजीको महत्त्व देता है, वह उतना ही ऊँचा

उठता है; क्योंकि जीव प्रभुजीका अंश है।

विश्वासी भक्त (श्रीयुत पं० श्रीनाथजी दुबे) 'भगवान् जो कुछ करते हैं, अच्छा ही करते हैं'— गया होगा, पर यह भी निश्चित नहीं कि उसकी जीवन-परम पावन नर्मदा-तट-निवासी क्षत्रिय-पुत्र गिरिवरके लीला समाप्त हो ही गयी। विश्वास करो, दयामय भगवान्

ये वचन सुनकर गाँववालोंको बड़ी चिढ़ होती, कहते— सब कल्याण ही करेंगे।'

'माता-पिता जीवित हैं। गौरी-जैसी दक्ष गृहिणी है। ऊदा-जैसे योग्य पुत्रके साथ सुविधा-सम्पन्न घरमें ही यह बात बँटाईपर दे दी। उससे प्राप्त अन्नसे दम्पतीका जीवन-निर्वाह हो जाता। दोनों भजन, पूजन एवं कीर्तन-स्मरणमें

निकलती है। आपत्ति आये, तब विदित हो जाय कि भगवान् सब कल्याण करते हैं या नहीं।' और यह सत्य अस्वीकार भी कैसे किया जाय!

जटिलतम परिस्थितियों एवं भयानक विपदाओंमें भी करुणामूर्ति प्रभुकी अनन्त करुणापर सुदृढ विश्वास हो,

मन तनिक भी विचलित एवं व्यथित न हो-यही तो प्रभुका विश्वास है। किंतु गिरिवरकी सचमुच भगवच्चरणारविन्दमें अद्भुत प्रीति एवं अनुपम निष्ठा थी।

भगवद्विश्वास उनमें कूट-कूटकर भरा था—'करुणामय प्रभुका प्रत्येक विधान मंगलमय है। वे जो कुछ कहते हैं, शुभ और मंगलके लिये ही। मंगलमूर्ति दयाधाम अमंगल और अकल्याण कर ही कैसे सकते हैं ?'

सहसा माता-पिता चल बसे। गिरिवर केवल इस कारण दुखी हुए कि अब माता-पिताकी सेवासे उन्हें वंचित होना पड़ा। मन-ही-मन व्यथित होकर भी उन्होंने कहा—'मंगलमूर्ति प्रभु सदा मंगल ही करते हैं।'

कुछ ही दिन बीते, नर्मदामें स्नान करते समय ऊदाको मगरने पकडा और वह उसे जलमें ले गया। बालक ऊदा श्रीभगवानुको पुकारता रहा, पर कुछ न हो सका। अदृश्य हो गया वह।

करुण-क्रन्दन करती गौरी घर पहुँची। गिरिवर आराध्यकी पूजासे उठे ही थे। एकमात्र पुत्र ऊदाकी

जलसमाधिका वृत्तान्त सुनते ही अभ्यासवश मुँहसे निकल गया—'भगवान् जो कुछ करते हैं, अच्छा ही करते हैं!'

फिर गिरिवरने अपनी धर्मपत्नीको समझाया—'ऊदाने

सदा श्रीभगवान्की पूजामें सहायता की। वह प्रतिदिन कीर्तन

करता। मगरके पकड़नेपर भी उसने भगवान्को पुकारा,

अतएव वह निश्चय ही प्रभुके अक्षय सुख-शान्ति-निकेतनमें

ग्रहण करनेमें आपत्ति नहीं।'

बालकके पैरमें जल-जन्तुओंके काटनेसे घाव हो गया था। राजाने उसकी चिकित्साकी सुव्यवस्था की। इक्कीस दिन मूर्च्छित रहनेके अनन्तर बालकको होश आया। उसका घाव भी अच्छा हो गया।

माता-पिता एवं पुत्रके अभावमें गिरिवरने खेती

ही दिन व्यतीत करते। इस प्रकार गिरिवर और गौरी दोनों

प्रसन्न रहने लगे, किंतु गौरी पुत्र-स्मृतिसे कभी-कभी

पत्नीका परलोकवास हो गया था। विरक्त होकर वे

संन्यास लेनेका विचार कर ही रहे थे कि उनके पिताके

सिद्धयोगी गुरुने उनके समीप आकर कहा-'तुम एक

अनुष्ठान करो। उससे तुम्हें एक सुयोग्य पुत्रकी प्राप्ति

होगी। राजतिलकके क्षणतक उसे अपने माता-पिताकी

स्मृति नहीं रहेगी। तुम उसे समुचित शिक्षा प्रदानकर राज्य-पदपर अभिषिक्त कर देना। तदनन्तर तुम्हारे संन्यास

अनुष्ठान किया। अनुष्ठान पूर्ण होनेपर वे नावमें बैठे हुए

नर्मदाजीमें मछलियोंको अन्न खिला रहे थे, उसी समय

उन्होंने बहते हुए एक बालकको देखा। राजाने प्रयत्न

करके तुरंत उसे अपनी नावपर चढ़ा लिया।

राजा चन्द्रसेनने गुरुजीके साथ अरण्यमें जाकर

उस प्रदेशके सन्तानहीन नरेश चन्द्रसेनकी प्राणप्रिय

व्याकुल हो जाती थी।

वह बालक था, गिरिवर-पुत्र ऊदा। ऊदाको पकडकर मगरने जब डुबकी लगायी, तो दूसरे मगरने उसपर आक्रमण

कर दिया। ऊदा मगरके मुँहसे छूटकर बह चला था। ऊदा अपने माता-पिताको भूल गया था। राजा

चन्द्रसेनने उसका नामकरण किया—उदयराज। राजाने

िभाग ९४

संख्या १२] विश्वास	ग्री भक्त २९
<u>~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~</u>	
उसे समझाया—'तुम मेरे पुत्र हो और तुम्हारी माता	लहरें ले रहा था। वाणी अवरुद्ध थी।
कमलादेवीका स्वर्गवास हो चुका है।'	'तू मुझे अत्यधिक प्रिय है।' अमृतमयी वाणीमें
राजाने उदयराजकी शिक्षाकी व्यवस्था की। अत्यन्त	मनमोहनने कहा—'तेरे बिना मुझे अच्छा नहीं लगता, इसी
प्रतिभाशाली उदयराज राज्योचित योग्यतामें पारंगत हो	कारण यहाँ दिव्य वृन्दावन प्रकट हुआ है। अब तू मेरे धामको
गये। विजयनगर-नरेशकी रूप-गुण-सम्पन्ना पुत्रीसे उनका	चल। गौरी अभी जीवित है। उसके मनमें पुत्रके प्रति ममता
विवाह हो गया। महाराज चन्द्रसेन उदयराजको राज्य-	शेष है। अतएव वह अपने ऊदासे मिलकर मेरे धाम आयेगी।'
पदपर आसीनकर संन्यास ग्रहणकर तपश्चरणार्थ वनमें	वनमालीके इतना कहते ही गिरिवरका शरीर
चले गये।	ज्योतिर्मय हो उठा। सहसा शरीरसे ज्योति–पुंज निकलकर
एक बार अवर्षणके कारण भयानक अकाल पड़ा।	श्रीश्यामसुन्दरके चरणोंपर गिर पड़ा। श्रीश्यामसुन्दरने
अन्न और तृणके बिना मनुष्य और पशु काल-कलवित	उसे वक्षसे लगाया और दिव्य वृन्दावनके साथ वे
होने लगे। घरकी सामग्री बेच देनेपर भी जब निर्वाहका	अन्तर्धान हो गये। अरण्यमें गिरिवरके शरीरकी रक्षाका
कोई मार्ग शेष नहीं रहा, तब गिरिवर श्रीठाकुरजीकी	दायित्व वनदेवीपर रहा।
पूजाके दायित्वके साथ अपनी सहधर्मिणी गौरीकी	गिरिवर-पत्नी गौरीका शव नर्मदाकी धारामें बहता
बहुमूल्य नथ पुरोहितजीको देकर स्वयं पत्नीसहित	चला जा रहा था। वह आठ दिनतक बहता ही रहा।
भगवत्स्मरण करते हुए घरसे निकल पड़े।	भगवान्की दयासे उसे किसी पक्षी या जल-जन्तुने
'भगवान् जो कुछ करते हैं, कल्याण ही करते हैं'—	स्पर्शतक नहीं किया। आठवें दिन स्नान करते हुए एक
अत्यन्त दारुण स्थितिमें भी अद्भुत विश्वासी भक्त गिरिवरके	महात्माने शवमें जीवनका अनुमानकर उसे पकड़ लिया।
मुखसे तुरन्त निकला। गाँवके बाहर वे सपत्नीक वृक्षके	वे उसे बाहर ले आये। अभिमन्त्रित जलके छींटेसे
नीचे सोये थे कि पत्नीको काले नागने डँस लिया। वह	गौरीकी चेतना लौट आयी। उन महात्माने उसे सिद्ध
विषसे छटपटाती हुई भगवत्स्मरण करती रही; अन्तमें उसका	फल खानेको दिया, तो उसमें शक्तिका संचार तो हुआ
श्वास रुक गया। गिरिवर रातभर पत्नीके शवके समीप बैठे	ही, उसके संस्कारोंका बोझ भी उतर गया।
भगवन्नाम-कीर्तन करते रहे और प्रात:काल शवको कन्धेपर	महात्मा दिव्यदर्शी थे। उन्होंने गौरीसे उसके पतिके
उठाकर नर्मदाजीमें प्रवाहितकर आगे बढ़ चले—सर्वथा	परमधाम-गमनकी बात बतायी। गौरीने कहा—'मेरे पूज्य
निरुद्धिग्न, सर्वथा स्थिर एवं शान्त।	पतिदेव सदा, सर्वथा ठीक कहते थे कि भगवान् जो कुछ
अब गिरिवर अकेले थे—सर्वथा एकाकी। वैराग्य	करते हैं, कल्याण ही करते हैं। यदि मैं उनके साथ होती,
तीव्रतम हो उठा। वे प्रभु-दर्शनके लिये व्याकुल होने	तो उन्हें परमप्रभुकी प्राप्ति सम्भव नहीं थी।'
लगे। अब तो उन्हें अपने तन–मनकी भी सुधि नहीं थी।	महात्माके बताये स्थानपर गौरी अपने पतिके निष्प्राण
वृक्षके नीचे बैठे-बैठे करुण-क्रन्दन करने लगे। प्रभुके	शरीरके समीप पहुँची। वहाँ चार ब्रह्मचारी भी उपस्थित
लिये रोते-छटपटाते वे मूर्च्छित हो गये।	हो गये। उन्हें जलांजलि दी। तदुपरान्त वह गैरिक वस्त्र
लीलाधारी द्रवित हुए। नर्मदाके स्थानपर	धारणकर, हाथमें इकतारा ले, आनन्दमग्न हो, भगवन्नाम-
कालिन्दी प्रकट हो गयी। वन दिव्य वृन्दावनमें परिणत	कीर्तन करती हुई यत्र-तत्र भ्रमण करने लगी। इस प्रकार
हो गया। सम्मुख कदम्बके नीचे पीताम्बर परिवेष्ठित	वह असंगभावसे एक नगरमें प्रविष्ट हुई। वहाँ अत्यधिक
मयूरपिच्छधारी त्रिभंग-श्यामसुन्दर अधरोंपर वंशी रखे	उल्लाससे उत्सव मनाया जा रहा था।
अमृत-रसकी वर्षा कर रहे थे। जड़-चेतन, सभी आनन्दमग्न	वह नगर महाराज चन्द्रसेनका था। वे कल ही
थे। त्रिभुवनसुन्दरको अलौकिक रूप-माधुरीके दर्शनकर	उदयराजका राज्याभिषेककर वनमें चले गये थे। उन्होंने
गिरिवर जड़-से हो गये। उनके हृदयमें आनन्दाम्बुधि	उदयराजको उसके जलमें मिलनेकी सत्य घटना भी सुना

उदयराजने प्रसन्नमनसे कहा—'पिताजी सच कहते थे दी थी। उसी रात्रि उदयराजने स्वप्नमें अपनी माता गौरीको संन्यासियोंके वेषमें देखा था। अतएव नगरमें कि 'प्रभू सदा मंगल ही करते हैं।' सर्वत्र घोषणा कर दी गयी थी कि 'किसी संन्यासिनीके पुत्रके मिल जानेपर गौरीकी आसक्ति नष्ट हो नगरमें प्रविष्ट होते ही नरेशको तुरंत सूचना दी जाय।' गयी। अत्यधिक विरक्तिके कारण वह भजनके लिये समाचार मिलते ही उदयराज दौडे। माताको देखते अरण्यमें जाना चाहती थी, किंतु पुत्रके आग्रहसे नगरके

पाण्डवोंके वन चले जानेपर एक दिन महर्षि मैत्रेय

में तीर्थयात्रा करते-करते कुरुजांगल देशमें गया था। वहाँ

वे आजकल जटा और मृगछाला धारण किये तपोवनमें निवास कर रहे हैं। उनके दर्शनके लिये बडे-बडे ऋषि-

कहा—'बेटा दुर्योधन! मैं तुम्हारे हितकी बात कह रहा

हूँ। तुम तनिक समझदारीसे काम लो। पाण्डवोंका, कुरुवंशियोंका, सारी प्रजाका और तुम्हारा भी हित तथा

प्रिय इसीमें है कि तुम पाण्डवोंसे द्रोह मत करो। वे सब-के-सब वीर, योद्धा, बलवान्, सत्यप्रतिज्ञ, आत्माभिमानी

दुर्योधनकी यह उद्दण्डता देखकर मैत्रेयजीने उसको शाप दिया—'मूर्ख दुर्योधन! तू मेरा तिरस्कार करता है और मेरी बात नहीं मानता। ले तू इस अभिमानका फल चख। तेरे इस द्रोहके कारण कौरवों और पाण्डवोंमें घोर युद्ध होगा। उसमें भीमसेन गदाकी चोटसे तेरी जाँघ तोड़ डालेंगे।' महर्षि मैत्रेयके ऐसा कहनेपर धृतराष्ट्र उनके

चरणोंपर गिरकर अनुनय-विनय करने लगे। उन्होंने कहा—'भगवन्! ऐसी कृपा कीजिये, जिससे यह शाप न लगे।' मैत्रेयजीने कहा—'राजन्! यदि तुम्हारा पुत्र पाण्डवोंसे मेल कर लेगा, तब तो मेरा शाप नहीं लगेगा,

नहीं तो अवश्य लगेगा।' हुआ भी यही: भीमने अपने गदा-प्रहारसे दुर्योधनकी जंघा तोड़ डाली। इस प्रकार और राध्यसोंके छात्र हैं। उनके हाथों बाहे-बाहे राध्यसोंका कार्य महाप्रक्रोंके लिएन एक उपे प्राप्त के जाने कार्य

ऋषि-मुनियोंके समाजमें तुम्हारी बड़ी हेठी हुई है। अब सँभल जाओ।' इसके बाद दुर्योधनकी ओर मुँह फेरकर

है। इसलिये वहाँसे मैं तुम्हारे पास आया हूँ; क्योंकि मैं तुमपर सदासे स्नेह और प्रेम रखता हूँ। राजन्! तुम्हारी सभामें तुम्हारे सामने जो अन्याय-कार्य हुआ है, उससे

मुनि आते हैं। धृतराष्ट्र! मैंने वहीं यह सुना कि तुम्हारे पुत्रोंने अज्ञानवश जुआ खेलकर उनके साथ अन्याय किया

धृतराष्ट्रकी राजसभामें आये। महर्षि मैत्रेयके पधारते ही धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंके सहित उनके सेवा-सत्कारमें लग गये। कुशल-प्रश्नके पश्चात् मैत्रेयजीने कहा—'राजन्!

संयोगवश काम्यक वनमें धर्मराज युधिष्ठिरसे भेंट हो गयी।

बोध-कथा—

सुनाया। माताने उससे पतिकी भगवत्प्राप्तिकी बात कही। महापुरुषोंके प्रति उद्दण्डताका दुष्परिणाम

गौरीने पुत्रको उठाकर वक्षसे सटा लिया—'ऊदा! मेरा प्राणप्रिय ऊदा!!' गौरी राज-सदन पहँची। उदयराजने अपना वृत्तान्त

आँसुओंसे गौरीके चरण धुल गये।

ही उसके चरणोंपर गिर पड़े—'माँ! माँ!!' उदयराजके

अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

बाहर एक कुटियामें रहकर निरन्तर भजन करने लगी।

गौरीकी भगवत्प्रीति पराकाष्ठापर पहुँची और दयामय

प्रभुने उसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया। प्रभुका

दर्शन करते-करते ही उसने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

उदयराज भी सपत्नीक प्रभ्-भजन करते हुए

िभाग ९४

नाश होनेवाला है और हिडिम्ब, बक, किमीर आदि राक्षसोंको उन्होंने मार भी डाला है। जिस समय रातमें वे यहाँसे जा

रहे थे, किर्मीर-जैसे बलवान् राक्षसको भीमसेनने बात-

की-बातमें मार डाला। बेटा! तुम मेरी बात मान लो। क्रोधके वश होकर अनर्थ मत करो।'

उस समय दुर्योधन मुसकराकर पैरसे जमीन कुरेदने और

अपनी सूँड़के समान जाँघपर हाथसे ताल ठोंकने लगा।

जिस समय महर्षि मैत्रेय इस प्रकार कह रहे थे,

ग्वालियरका शनिधाम—शनिश्चरा संख्या १२] ग्वालियरका शनिधाम—शनिश्चरा तीर्थ-दर्शन— (श्रीगोपाल हरिजी दूबे) मध्यप्रदेशके मुरेना जिलेमें बानमोर तथा रिठौरा मुस्लिम शासकोंका शासन रहा। उन्होंने मन्दिरके बाहरी कलाके बीच ऐंतीगाँवकी तलहटीमें शनिदेवका प्राचीन हिस्सेको तोड़कर उसे अपनी शैलीमें निर्मित कराया। मन्दिर है। वर्तमानमें यह स्थान सड़कमार्ग तथा ग्वालियर-पन्द्रहवीं शताब्दीमें गोहदके जाट राजाओंने इसे अपने भिण्ड रेलवे मार्गसे जुड़ा हुआ है तथा शनिश्चरा नामसे कब्जेमें लिया और सत्रहवीं शताब्दीमें सिन्धिया राज्य रेलवे स्टेशन है। इसके अतिरिक्त आगरा-मुम्बई मार्गपर अस्तित्वमें आया और १८०६में सिन्धिया वंशद्वारा इस स्थित वानमोरसे भी सीधा पक्का मार्ग है। आवागमनके लिये मन्दिरका निर्माण नये सिरेसे कराया गया। उसी स्वरूपमें शनिधामको बस, टेम्पो तथा ऑटो उपलब्ध रहते हैं। मन्दिर आजतक विद्यमान रहा। वर्ष २००८-०९में एक समय था, जबकि यह क्षेत्र घने जंगलसे आच्छादित मन्दिरके बाहरी भागका निर्माण हुआ। था और इसमें बाघ, रीछ, चीता, तेंदुआ आदि वन्य जीव पुरातत्त्वविशेषज्ञ रमाकान्त चतुर्वेदी शनिपर्वतपर नालंदाकालकी संस्कृतिके मिलनेकी बात भी स्वीकार करते हैं। बहुतायतसे पाये जाते थे। वनोंकी कटाई हो जानेसे ये वन्यजीव भी विलुप्त हो गये हैं। शनि मन्दिरका जीर्णोद्धार शनिश्चरा पर्वतको परिक्रमा गिरिराजजीको परिक्रमासे होकर जन-सुविधाएँ भी उपलब्ध हो गयी हैं। यह स्थान कहीं ज्यादा लम्बी है। गिरिराजजीकी परिक्रमा जहाँ सात कोसकी है, वहीं शनिश्चरा पर्वतकी परिक्रमा तेरह ग्वालियरसे केवल २२ किलोमीटर दूर है। **ऐतिहासिक कथानक**—शनिश्चराधाममें स्थित कोसकी बतायी जाती है। हालाँकि इससे श्रद्धालुओंकी निष्ठापर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे शनिदेवका आशीर्वाद शनिदेवका प्राचीन मन्दिर त्रेतायुगका बताया जाता है। एक कथाके अनुसार जब श्रीहनुमानुजी माता सीताका पता प्राप्त करनेके लिये ऊबड़-खाबड़ रास्तोंसे गुजरते हुए लगानेके लिये लंकामें गये, तब उनकी नजर रावणके बन्दीगृहमें परिक्रमा पूरी करते हैं। वर्ष १८१७ में शनिपर्वतकी शिला नगरके जिला सेठ उलटे लटके हुए शनिदेवपर पड़ी। हनुमान्जीने कई देवताओंको रावणके कारागारसे मुक्त कराया। अन्तमें जब दौलतरामने शनिप्रकोपसे बचनेके लिये ले जाकर शिरडीके शनिदेव बचे तो हनुमान्जीने जल्दबाजीमें वेगपूर्वक छुड़ाते समीप महाराष्ट्रके सिगनापुरमें स्थापित की। वहाँ यह हुए उन्हें लंकासे बाहर फेंका। शनिदेव तेजगतिसे आकर शिला खुले आकाशमें विशाल चब्रूतरेपर स्थापित है। शनिधामके इस पहाड़से टकराये, जिससे उनके पैरमें हलकी-शनिदेवके प्रमुख मन्दिर—प्रमुख शनिमन्दिर सी लचक भी आ गयी। शनिके स्पर्शसे यहाँकी विशाल ग्वालियरसे २२ किलोमीटर दूर ऐंतीगाँवकी तलहटीमें स्थित शिला टूट गयी और इस पहाड़पर बिखर गयी, तबसे यहाँ है। इसके अतिरिक्त वृन्दावनके पास कोकिलावनमें, शनिका स्थान माना जाता है। महाराष्ट्रके सिगनापुरमें, तामिलनाडुमें कराइकलके पास शनिदेव-मन्दिरमें स्थित सूर्यदेवकी प्रतिमाकी स्थापना तिरुनल्लरुमें, दिल्लीके पास कर्नाटप्लेस इलाकेमें तथा महाराजा विक्रमादित्यके द्वारा करायी गयी थी। उसके महरौलीके पास असोत्रा-फतेहपुरमें हैं। मध्यप्रदेशके इन्दौर बाद निर्माण बदलते गये और मन्दिरका बाहरी नक्शा भी तथा उज्जैनमें प्राचीन शनिमन्दिर हैं। वैसे अब अनेक बदल गया, लेकिन प्रतिमा आज भी मूलस्वरूपमें है। स्थानोंपर शनिदेवके मन्दिर भक्तोंद्वारा बनवाये गये हैं।

पुराने इतिहास और अभिलेखोंके अनुसार छठवींसे नौवीं शनि सौरमण्डलमें बृहस्पतिसे दो लाख तथा सूर्यसे सदीतक इस मन्दिरपर कछवाह राजाओंका आधिपत्य चौदह लाख योजन ऊपर नीले रंगमें स्थित हैं। हमारे नवग्रहोंमें शनिकी गति सबसे मन्द है। यह सत्ताईस वर्षमें रहा। उसके बाद चौदहवीं सदीतक तोमरोंने मन्दिरकी व्यवस्थाएँ देखीं। इस दौरान तिरसठ वर्षतक यहाँ अपना भ्रमण पूरा करते हैं। यह एक राशिमें तीस महीने

भाग ९४ रहते हैं। यह जिस राशिमें रहते हैं, उसके पूर्व और है। शनि ग्रह बुध तथा शुक्रसे मित्रता रखता है तथा आगामी राशिपर भी अपना प्रभाव डालते हैं। शनिदेवकी बृहस्पतिसे समभाव (न मित्र न शत्रु) रखता है। यह दशा साढे साती दशा कहलाती है। शनिग्रह लोहा, तेल, तिल, नीलम तथा कालेरंगकी शनिकी उत्पत्ति -- शनिदेव सूर्यदेवके पुत्र हैं। वस्तुओंका अधिपति माना गया है। जन्म-कृण्डलीमें धर्मग्रन्थोंके अनुसार सूर्यकी द्वितीय पत्नी छायाके गर्भसे शनि ग्रह बली या उच्चस्थ होकर शुभभावमें विद्यमान शनिदेवका जन्म हुआ। शनिको श्याम वर्णका देखकर हो तो लोकप्रियता, सार्वजनिक प्रसिद्धि, वाहन-सुख, सूर्यने अपनी पत्नी छायापर आरोप लगाया कि शनि मेरा गृहस्थ-सुखको बढ़ाता है। अशुभ शनि अतुलनीय पुत्र नहीं है। तभीसे शनिदेव अपने पिता सूर्यसे शत्रुभाव शारीरिक एवं मानसिक संत्रास देता है। रखते हैं। शनिदेवने अपनी तपस्याके द्वारा शिवजीको शनिदेवकी कृपाप्राप्तिके उपाय—(१) सूर्योदयके पूर्व प्रति शनिवार पीपलवृक्षके नीचे एक लोटा प्रसन्नकर अपने पिताकी भाँति शक्तिको प्राप्त किया। शिवजीने शनिको वरदान माँगनेके लिये कहा, तब जल चढ़ायें। अगरबत्ती-धूप जलाकर सरसों तेलका शनिदेवने प्रार्थना की कि युगों-युगोंसे मेरी माता छायाकी दीपक जलायें। पराजय होती रही है, उन्हें मेरे पिता सूर्यद्वारा बहुत ज्यादा (२) सूर्योदयके पूर्व या सूर्यास्तके पश्चात् शनि-अपमानित एवं प्रताडित किया गया है। अत: मेरी स्तोत्र या मन्त्रका पाठ करें। माताकी इच्छा है कि उनका पुत्र शनि अपने पितासे (३) काली गायका पूजनकर गायको काले चनेके उनके अपमानका बदला ले और उनसे भी अधिक साथ गुड़ खिलायें। शक्तिशाली बने। तब भगवान् शंकरने वरदान देते हुए (४) काले कुत्ते या कौवेको तेलमें तली हुई कहा कि नवग्रहोंमें तुम्हारा सर्वश्रेष्ठ स्थान रहेगा। मानव गुडकी मीठी रोटी दें। (५) भिखारी, अपाहिज, कोढ़ी व्यक्तिको शनिवारके तो क्या, देवता भी तुम्हारे नामसे भयभीत रहेंगे। शनिदेवकी नौ पत्नियाँ हैं। शनि न्यायके देवता हैं। इनका दिन काले वस्त्र, लोहेकी बनी दैनिक जीवनमें उपयोगी वाहन गिद्ध है तथा रथ लोहेका बना होता है। सामग्री दानमें दें। शनिदेवकी विशेषताएँ — (१) सूर्यपुत्र शनिदेव (६) किसी प्रसिद्ध जाग्रत् शनिस्थलीमें जाकर मृत्युलोकके न्यायाधीश हैं, जो अपना समय आनेपर शनिदेवका अभिषेक करें। जातकके अच्छे-बुरे कर्मींके आधारपर कार्य करते हैं। शनिस्तोत्र इस प्रकार है-(२) शनिदेव न्यायाधीश हैं और न्याय हमेशा नीलद्युतिं शूलधरं किरीटिनं अप्रिय होता है। इसलिये वे क्रूर कहलाते हैं। गृध्रस्थितं त्रासकरं धनुर्धरम्। (३) काला रंग ही एक ऐसा रंग है, जिसपर चतुर्भुजं सूर्यसुतं प्रसन्नं दूसरा रंग नहीं चढ़ता है। वन्दे सदाभीष्टकरं वरेण्यम्॥ (४) शनिकी धातु लोहा है, जो सबसे भारी है। विशेष मन्त्र— ज्योतिषीय दुष्टिकोण — भारतीय ज्योतिषमें सौर-नीलाञ्जनसमाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम्। मण्डलकी बारह राशियोंमें मकर, कुम्भ राशि शनिग्रहके छायामार्तण्डसम्भूतं तं नमामि शनैश्चरम्॥ प्रभावक्षेत्रमें आती है अर्थात् शनिको दोनों राशियोंका सूर्यपुत्रो दीर्घदेहो विशालाक्षः शिवप्रियः। स्वामित्व प्राप्त है। शनिग्रह एक राशिको साढे सात मन्दचारः प्रसन्नात्मा पीडां हरतु मे शनिः॥ वर्षतक प्रभावित करता है। कोणस्थः पिंगलो बभुः कृष्णो रौद्रान्तको यमः। नक्षत्रोंमें पुष्य, अनुराधा, उत्तरा भाद्रपदपर शनिका सौरिः शनैश्चरो मन्दः पिप्पलादेन संस्तुतः॥

॥ ॐ शं शनैश्चराय नम:॥

॥ ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनये नमः॥

आधिपत्य है। यह तुला राशिके बीस अंशतक उच्चस्थ

तथा मेष राशिके बीस अंशतक परम नीचस्थ माना जाता

भक्तकवि श्रीकृष्णदयार्णवजी संख्या १२] भक्तकवि श्रीकृष्णदयार्णवजी सन्त-चरित— (श्री प्रा०ज०रा० कस्तुरे) मध्यकालीन मराठी वाङ्मयमें कविवर कृष्णदयार्णवका अन्तमें सपनेमें गुरु गोविन्दने दर्शन देकर कहा—'इस नाम विशेष रूपसे प्रसिद्ध है। उनका निवास-स्थान रोगसे तो क्या भवरोगसे ही मुक्ति देनेकी शक्ति भगवत्कृपामें महाराष्ट्र प्रदेशमें कहाड़के निकट कोपारूढ़ गाँवमें था। है। अतएव तू भगवन्नाम-गुण-संकीर्तन अनन्यरूपसे उन्होंने संवत् १७३१ वि० में वैशाख शुक्ल अक्षय कर। भगवान्की असीम कृपासे तेरी व्याधि मिट जायगी।' तृतीयाको जन्म लिया था। उनकी बाल्यावस्थाका नाम वैसी ही बात एकनाथजीने भी स्वप्नमें दर्शन देकर कही—'मैंने श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धका विवेचन नरहरी था। वे माध्यन्दिन शाखाके शुक्लयजुर्वेदीय ब्राह्मण थे। उनके पिताका नाम नारायण और माँका नाम किया है। अब तू भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन करनेवाले दशम स्कन्धका विवेचन कर। भगवान्की बहिशबाई था। उनकी बाल्यावस्थामें ही उनके पिताका स्वर्गवास हो गया। उस समय समूचे महाराष्ट्रमें सम्राट् कृपासे ही तुझे इस रोग तथा संसार-सागरसे भी मुक्ति औरंगजेबकी मुगल सेनाने आतंक फैला रखा था। मिलेगी।' परिस्थितिवश नरहरीको अपना गाँव छोड़कर मराठवाड़ेके उन्होंने गुरुके वचनमें विश्वास रखकर ५४ वर्षकी आँबाजोगाई नामक शहरमें आश्रय लेना पडा। वहाँ आयुमें श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका मराठीमें सविस्तार उनकी श्रीगोविन्द नामक एक सत्पुरुषसे भेंट हो गयी, विवेचन करनेका महान् कार्य प्रारम्भ किया। जिस आयुमें जो 'आनन्द-सम्प्रदाय'के महात्मा थे। गुरु गोविन्दने सर्वसाधारण मनुष्य अपने-अपने व्यवसायसे निवृत्त होनेकी नरहरीपर अनुग्रह किया और उन्हें उपदेश देकर कृतार्थ इच्छा करता है, उसी आयुमें भगवान्की कृपापर पूरी श्रद्धा किया। उन्होंने नरहरीका नाम श्रीकृष्णदयार्णव रख रखकर कृष्णदयार्णवने महान् कार्यका भार अपने कन्धेपर रख दिया। गुरुने उन्हें गीता-भागवत, ज्ञानेश्वरी आदि ग्रन्थोंका लिया। संवत् १७८४ में उन्होंने ग्रन्थका आरम्भ किया। पारायण करने तथा कोराल भिक्षापर निर्वाह करनेका उन्होंने श्रीधर स्वामीकी संस्कृत-टीकाके आधारपर 'हरिवरदा' उपदेश दिया। गुरुके उपदेशके अनुसार श्लोक गाते-गाते नामसे दशम स्कन्धकी टीका ओवी (पद्य)-बद्ध की, जिसका

'श्रीकृष्ण दयार्णव समर्थ' उच्चारणकर मधुकरी माँगते थे। सदा 'जय-जय श्रीरघुवीर समर्थ' का उच्चारण करनेवाले रामदास स्वामी स्वयं भी 'समर्थ' नामसे प्रसिद्ध हए। वैसे ही श्रीकृष्णदयार्णवकी जय-जयकार कहनेवाले नरहरी भी आगे चलकर इसी नामसे प्रसिद्ध हुए। गुरुके बताये हुए मार्गपर चलते-चलते कृष्णदयार्णवके

बढता ही गया। अनुग्रह करनेवाले गुरु गोविन्द पहले ही

चल बसे थे। अब तो बस—'औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो

नारायणो हरिः' की स्थिति आ गयी। मनमें एक ही

विचार था। 'किस उपायसे यह भयानक रोग दूर हो?'

आयुके ५० वर्ष बीत गये।

पूर्वीर्ध श्रावण कृष्ण ८, वि० संवत् १७९१में पूर्ण हुआ। अबतक उनके शरीरकी व्याधि पूर्णरूपेण निवृत्त हो गयी थी। महारोग-जैसे भयानक व्याधिपर भगवत्कृपारूपी औषधि सफल हुई। कृष्णदयार्णवकी आयु अब साठ सालकी हो चुकी थी। दशम स्कन्धके उत्तरार्धपर टीका लिखनेका कार्य शेष रह गया था। इस महान् कार्यका आरम्भ करें या न करें, इस विचारमें दो-तीन मास बीत गये। अन्तमें निश्चय राजा हो या रंक, किसीका भी कर्मभोग टल नहीं हुआ कि भगवान्की कृपा हो तो शेष ग्रन्थ-रचना भी पूरी सकता। ईश्वरोपासनामें अपना काल व्यतीत करनेवाले होगी ही। बड़ी आशाके साथ नीरोग शरीर और उत्साहित कृष्णदयार्णवको इसी आयुमें महारोगने ग्रस्त कर लिया। मनसे कृष्णदयार्णवने उत्तरार्ध लिखना प्रारम्भ किया। कुछ दिन औषधोपचार करनेमें व्यतीत हुए, परंतु रोग उत्तरार्धके ४१ अध्यायोंमेंसे ३७ अध्यायोंका विवेचन पूरा

हुआ। ३८वें अध्यायके कुछ श्लोक भी पूरे हो गये। परंतु

अखण्डरूपसे १३-१४ वर्षतक निरन्तर लेखन करनेसे

कृष्णदयार्णवका शरीर पुन: शिथिल हो गया। उनकी आयु

भी ६६ वर्षकी हो गयी थी। अब उनके सामने एकमात्र

लेखन करके उत्तमश्लोकने शेष अध्यायोंका विवेचन चिन्ता यह थी कि मेरा भगवद्गुणानुवादका यह कार्य पूरा किया। ग्रन्थ पूरा हो गया। एक महान् संकल्प कहीं अधूरा तो न रह जायगा। सत्य होकर सृष्टिमें आ गया। इस ग्रन्थकी ओवी

श्रीकृष्णदयार्णव स्वामीके अनेक शिष्य थे। उनमेंसे सोलह शिष्य प्रमुख माने जाते थे। इन सोलह शिष्योंमें

भी उत्तमश्लोक नामक शिष्य पट्टशिष्य माना जाता था। अपने गुरुके ग्रन्थका लेखन वही करता था। उसने श्रीकृष्णदयार्णवजीको वचन दिया, 'गुरुजी! आप कोई

चिन्ता न करें। आपका यह कार्य मैं पूर्ण करूँगा।'

शिष्यके इस वचनसे कृष्णदयार्णवके मनको बड़ा आश्वासन

मिला। उनकी चिन्ता मिट गयी। शान्तवृत्तिसे भगवच्चिन्तन करते-करते श्रीकृष्णदयार्णव स्वामी मार्गशीर्ष शुक्ल,

वि० संवत् १७९७में पैठणमें समाधिस्थ हो गये। अपने गुरुके परलोकवासके पश्चात् तीन वर्षतक

विलक्षण क्षमा |प्रेरक-प्रसंग— स्वामी उग्रानन्दजी बहुत अच्छे सन्त थे। आप बड़े

सिहष्णु तथा सर्वत्र भगवद्बुद्धि रखनेवाले थे। एक बार

आप उन्नाव जिलेके किसी ग्राममें पहुँचे। संध्या हो गयी थी। आप ब्रह्मानन्दकी मस्तीमें निमग्न एक पेडके तले गुदड़ी बिछाकर लेट गये। रात्रिमें उसी गाँवमें किसी किसानके

बैलको चोर चुराकर ले गये। गाँवमें थोड़ी देर बाद ही

हल्ला मचा और सबने कहा कि 'चलो, बैलोंको ढूँढ़ें, कहीं चोर जाता हुआ मिल ही जायगा।' ऐसा विचार

करके बहुतसे गाँववाले लाठी ले-लेकर बैलको ढूँढ़ने निकले। ढूँढते-ढूँढते वे उस जगहपर आये, जहाँ स्वामीजी पेड़के

नीचे सो रहे थे। उनमेंसे एक आदमीको स्वामीजी दिखायी दिये। उसने सबको पास बुलाकर कहा कि 'लो, चोरका

पता तो लग गया। देखो! यह जो पेड़के नीचे पड़ा हुआ है, इसके साथी तो बैल आगे लेकर भाग गये हैं और यह

यहीं रह गया है।' यों कहकर उन सबने स्वामीजीको चोर समझकर पकड़ लिया, उनकी गुदड़ी छीन ली और सबने मिलकर उन्हें खूब मारा। किंतु स्वामीजी बिलकुल शान्त रहे और कुछ भी नहीं बोले। पिटते-पिटते स्वामीजीके

सिन्निष्ठाके फलस्वरूप 'दत्तजननोत्साह', 'विचारचन्द्रिका' और 'तन्मयानन्दबोध' आदि ग्रन्थोंकी भी रचनाकर अपना जीवन सफल किया था। वह महान् ग्रन्थ तो केवल भगवत्कुपाके बलसे ही पूरा हो सका।

(पद्य)-संख्या बयालिस हजार है। भगवान् श्रीकृष्णके

सम्पूर्ण चरित्रका गुणानुवाद करनेवाला इतना विशाल दूसरा ग्रन्थ मराठी वाङ्मयमें कदाचित् प्राय: नहीं है।

इस दृष्टिसे 'हरिवरदा' ग्रन्थ भगवत्कृपाका एक अमर

प्रतीक है। इतना ही नहीं, कविवर श्रीकृष्णदयार्णवने

भगवत्कृपा और अपने गुरु श्रीगोविन्दके चरण-

भाग ९४

बन्द करके डाल दिया। जब प्रात:काल हुआ, तब सबने

उन्हें उस कोठरीमेंसे निकाला और पकड़कर उन्हें थाने ले

जाने लगे। थानेदार स्वामीजीको अच्छी तरहसे जानता था और वह स्वामीजीका बड़ा प्रेमी था। जब गाँववाले उन्हें लेकर वहाँ पहुँचे, तब थानेदारने दूरसे उन्हें देख लिया। वह कुर्सी छोड़कर भागा हुआ वहाँ आया और स्वामीजीके

पैरोंमें पड़कर उसने प्रणाम किया। थानेदारको प्रणाम करते देखकर गाँववाले बहुत घबराये कि यह क्या बात है! थानेदारने सिपाहियोंको बुलाकर कहा कि 'मारो इन दुष्टोंको, ये स्वामीजीको क्यों पकड़कर लाये हैं?' किसानलोग

थर-थर काँपने लगे। जब सिपाही उन्हें पकडने चले, तब

स्वामीजीने उन्हें ऐसा करनेसे रोका और फिर थानेदारसे कहा कि 'देख, जो तू मेरा प्रेमी है तो तू इन्हें कुछ भी दण्ड न दे और इन्हें छोड़ दे तथा सबको मिठाई मँगवाकर खिला।' थानेदारने बहुत-कुछ कहा, परंतु स्वामीजी नहीं

माने। उन्होंने थानेदारसे मिठाई मॅंगवाकर उन्हें खिलवायी और तब लौट जानेकी आज्ञा दी। थानेदार यह देखकर दंग रह गया और बोला कि 'ऐसा महात्मा तो आजतक कभी नहीं देखा।'

मुखसे खूनतक बहने लगा। फिर वे उन्हें बाँधकर गाँवमें ले अमरेश होता नहें जिल्ली से एक से प्रकार होता है के लेकिन से प्रकार के से से प्रकार के से प्रा

विवेक, विश्वास और प्रेम संख्या १२] विवेक, विश्वास और प्रेम (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) पहले यह बात कही गयी थी कि सब प्रकारकी वस्तु और देश-काल सुखप्रद होता तो प्राणी उसे कभी नहीं छोड़ता, परंतु ऐसा नहीं होता। जाग्रत्में जिनके चाहका अभाव विचार और प्रेमसे होता है। उनमें प्रेमकी बात तो पहले कही गयी थी, परंतु विचारके बारेमें सम्बन्धसे अपनेको सुखी समझता है, स्वप्नमें उनके विशेष बात नहीं हुई। अत: अब वही कही जाती है। सम्बन्धका त्याग कर देता है। सुषुप्तिकालमें जाग्रत् और स्वप्न दोनोंके ही दृश्योंसे सम्बन्ध नहीं रहता। इससे वास्तवमें विवेक, विश्वास और प्रेम—इनमें परस्पर सिद्ध होता है कि सभी संयोग वियोगसे युक्त हैं और कोई विरोध नहीं है। ये एक-दूसरेके सहयोगी हैं। विवेकी पहले जानता है और पीछे मानता है अर्थात् संयोगकी अपेक्षा संयोगका अभाव ही अधिक सुखप्रद उसपर विश्वास करता है एवं विश्वास करनेवाला पहले है। यह सभीके अनुभवमें आता है। मानता है और पीछे जानता है। अत: साधकको चाहिये कि संयोगकालमें ही यदि मनुष्य बुद्धिसे विचार करके अपने दोषोंको उसके वियोगका दर्शन करके किसी भी व्यक्ति, पदार्थ, जान ले, परंतु उनका त्याग न करे तो केवल जाननेसे देश, काल या परिस्थितिमें आसक्त न हो एवं किसीको काम नहीं चलता। वैसे ही केवल माननेसे भी काम अपने सुखका आधार न माने। दृश्यमात्रसे सर्वथा असंग नहीं चलता। अपनी मान्यताके अनुसार जीवन होना हो जाय। आवश्यक है। प्रतिदिन मनुष्य सुषुप्तिकालमें सब प्रकारके सम्बन्धोंका विवेक, विश्वास और प्रेम—ये सभी मनुष्योंको त्याग करता है, परंतु उसके अन्त:करणमें राग छिपा प्राप्त हैं। परंतु प्राप्त विवेकका आदर न करनेके कारण रहता है, उसका नाश नहीं होता। इस कारण जगनेपर मनुष्य जिनका विश्वास नहीं करना चाहिये, जो विश्वास सबके साथ पहलेकी भाँति सम्बन्ध हो जाता है। जबतक करनेके योग्य नहीं हैं, अपने जीवनमें जिनपर विश्वास शरीर और समस्त दृश्यवर्गसे सम्बन्ध बना रहता है, तबतक यह उसके सम्बन्धसे अपनेको सुख-दु:खका करके बार-बार धोखा खाया है, उनपर तो विश्वास करता है, उनको मानकर उनसे प्रेम करता है और भोक्ता मानता रहता है तथा दूश्यके सम्बन्धकी आसक्तिके जिनपर विश्वास करना चाहिये, उनपर नहीं करता। जो कारण बार-बार जन्मता और मरता रहता है। इसका सचमुच अपना है, उसको अपना नहीं मानता इसलिये साधकको विचार करके निश्चय करना और उससे प्रेम नहीं करता। जो कुछ भी दृश्य है, चाहिये कि जो कुछ भी देखने, सुनने और अनुभव जिसको मनुष्य इन्द्रिय, मन और बृद्धिके द्वारा देखता है, करनेमें आता है, शरीर, बृद्धि, मन, इन्द्रियोंके सहित वह चाहे व्यक्तिके रूपमें हो, चाहे देश, काल और किसी भी दृश्य पदार्थसे मेरा कोई भी सम्बन्ध नहीं है; वस्तुके रूपमें, सब-का-सब अनित्य है, इससे मनुष्यका क्योंकि न तो मेरी और इनकी जातीय एकता है और न सम्बन्ध सदा नहीं रहता। स्वरूपकी ही एकता है। अतः इनका और मेरा सम्बन्ध अज्ञानवश मनुष्य इनके संयोगको सुखका हेतु मान वास्तविक नहीं है। अज्ञानसे माना हुआ है। मैं इनसे सर्वथा असंग नित्य चेतन हूँ। ये सब-के-सब अनित्य लेता है, परंतु विचार करनेपर मालूम होता है कि किसीका भी संयोग नित्य सुख देनेवाला नहीं है, क्योंकि और पर-प्रकाश्य हैं। अपने प्रिय-से-प्रिय मित्रसे भी मनुष्य अलग होना मनुष्य अज्ञानवश शरीरमें अहंभाव तथा जाति, चाहता है। कोई भी वस्तु कितनी भी प्रिय क्यों न हो, वर्ण, आश्रम और क्रियाके साथ अपनी एकता करके मानने लगता है कि मैं ब्राह्मण हूँ, मैं अछूत हूँ, मैं उससे भी अलग होता है। यदि सचमुच कोई व्यक्ति,

व्यापारी हूँ, मैं गृहस्थी हूँ इत्यादि; किन्तु शरीरसे अलग ै है और उसीसे 'मम'की उत्पत्ति होती है एवं 'अहं' और होकर कोई भी ऐसा अनुभव नहीं करता। अतः 'मम'से ही चित्त अशुद्ध होता है। अतः चित्तशुद्धिके

कल्याण

अपनेको सर्वथा असंग कर लेना चाहिये। वह तभी होगा, जब दृश्यमात्रसे विमुखता प्राप्त होगी। विमुखता प्राप्त होते ही मैं और मेरा, तू और तेरेमें बदल जाता है अर्थात् जो वास्तवमें है, वह शेष रह जाता है।

जब साधकको यह अनुभव हो जाता है कि 'शरीर

विचारशील साधकको सदैव शरीरसे और संसारसे

में नहीं हूँ और दृश्यवर्गसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।' तब उसमें स्वाभाविक असंगता और निर्वासनाका उदय हो जाता है एवं उसका अन्त:करण अपने-आप शुद्ध

हो जाता है। उसमें किसी प्रकारका विकार नहीं रहता। अन्त:करण शुद्ध होते ही बोध प्रकट हो जाता है और

साधकको अपने लक्ष्यकी प्राप्ति हो जाती है। ध्यान रहे कि किसी-न-किसी प्रकारके संगसे 'अहं 'का भास होता

३६

उसीमें प्रेम हो सकता है, उसीसे योग हो सकता है और उसीका बोध होता है। इन तीनोंकी एकता ही वास्तविक एकता है और उसीसे प्राणीके सब प्रकारके अभावोंका

लिये 'अहं ' और 'मम 'का नाश करना अनिवार्य है और

अभाव होता है, जो प्राणिमात्रको प्रिय है। अत: यह

निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि विचारपूर्वक चित्त शुद्ध

\$

करना ही जीवका परम पुरुषार्थ है।

भाग ९४

'पांचजन्य लो हाथमें'

(पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

(१) पड़ी है गदाधर ? गदा आज

तुम्हारी? **ううううううううううううううううううう** कहाँ सुदर्शन संहारी॥ कहाँ चक्र ? नक्रका जो हमें निहत्थे देख शत्रु चढ़ आये ऊपर। मुरारे! आज भारत भू पर ॥ साथमें। धीर धनञ्जयको लिये आओ सत्वर मुरलीधर! मुरली धरो, पांचजन्य हाथमें॥ लो (?) पाँच गाँवके महाभारतके हामी! लिये मौन कहाँ त्रिभुवनके स्वामी? बैठे क्यों गाँवका नहीं हिमालयका सवाल जिसके हित उठ खड़ा हुआ भारी बवाल है।। आज त्रिविष्टप पर हुआ असुरोंका अधिकार है। देवलोक व्याकुल तुम्हें कबसे रहा पुकार है।। (3) है दैवेच्छासे धर्मयुद्ध सम्मुख आया। है स्वयं न हमने इसे बुलाया॥ कोटि कण्ठमें गूँज उठे फिर गीताका स्वर। रिपुओंके पड़े निर्भय भारत ऊपर॥ रथी भक्तके हित पुनः बन जाओ रथवान् तुम।

जीत वहीं जिस पक्षमें स्वयं धर्म भगवान् तुम॥

गोमाताकी सेवासे पुनरुत्थान संख्या १२] गोमाताकी सेवासे पुनरुत्थान गो-चिन्तन— पापका परिणाम भोग रहा है। तू अब भी चेत जा और अपना मेरे पूर्वज गाँवके सदा सम्पन्न किसान रहे। मेरे पिताजीका भी जीवन उन्नत रहा, वे चार-पाँच घण्टे तरीका बदल दे, नहीं तो अन्ततः तेरा सर्वनाश हो जायगा। गाय-बैलोंके वचन सुनकर मुझे बहुत व्यथा हुई ईश्वराराधनमें लगाते और शेष समय साहुकारी, गल्ला-और मैं चौंककर जाग उठा। मैंने देखा, यह तो स्वप्न बीजके देनेमें तथा खेतीके कार्यमें व्यतीत करते। इस कार्यमें उनका खूब मन लगता। उन्होंने भूमि भी पर्याप्त था। रात आधीसे अधिक बीत चुकी थी। किंतु मैं उसी एकत्र कर ली थी। वे कृषि बहुत उत्तम तरीकेसे करते। समय लालटेन लेकर गोशालामें गया। वहाँ देखा, सारे गाँवके लोगोंपर उनका प्रभाव था और सब लोग उनसे पशु भूखे खूँटेसे बँधे हैं। उनके आगे घास-भूसाका एक सन्तुष्ट रहते थे। पिताजीके परलोकगमनके बाद गृहस्थीका तिनका भी नहीं, कूड़ेका तो ढेर लगा है। मैं मन-ही-सारा दायित्व मुझपर आ पड़ा, किंतु क्रमशः सम्पत्तिका मन पश्चात्ताप करने लगा। मैंने उसी क्षण अपने हाथसे ह्रास होने लगा। थोड़े ही समयमें मेरी सम्पत्ति आधी रह गोशालाको साफ करना शुरू किया और दिनके दस गयी। भूमिका कार्य स्थगित हो गया। बीजका गल्ला बजेतक गोशालाकी सफाईमें लगा रहा। उस दिनसे हर सब डूब गया। पैसेकी आय बन्द हो गयी। खेतीसे अन्न समय मैं अपने जानवरों एवं गोशालापर ध्यान रखने कम होने लगा और अधिकांश जमीन परती पड़ गयी। लगा। प्रात:-सायं गोदुग्ध अपने हाथसे दुहना और देखते-देखते सारा काम चौपट हो गया। चारा-घास एवं स्वच्छ जल अपने सामने डलवाना मेरा में रात-दिन चिन्तित रहने लगा। भाग्यने जैसे मेरा मुख्य कर्तव्य हो गया। मेरे गाय-बैल जब चरने जाते, साथ छोड दिया था। मैं जिस कार्यमें हाथ डालता, तब मैं गोशाला अपने हाथोंसे साफ करता। कूड़ा-उसीमें असफल होता। मेरे दो और छोटे भाई हैं। उन करकट अलग गड्ढेमें डालता और उसकी अच्छी खाद लोगोंकी इच्छासे मुझे उनसे पृथक् होना पड़ा। सारी बनती। जानवर सुखपूर्वक रहने लगे। मेरे जानवर स्वस्थ सम्पत्ति तीन भागोंमें बराबर-बराबर बाँटकर हम सब और हृष्ट-पुष्ट हो गये। घृत-दुग्ध पर्याप्त मिलने लगा। अपना-अपना कार्य चलाने लगे। चार वर्ष बीत गये, बैलोंके सुस्वास्थ्यके कारण मेरी कृषि चमक उठी और किंतु मेरी दशा उत्तरोत्तर अवनत ही होती गयी। गाँवके अनाज पाँच-छ: गुना अधिक उत्पन्न होने लगा। खेतीमें लोग मुझे निरुद्यमी और आलसी कहने लगे। मुझपर मेरी रुचि बढ़ गयी और निराशा दूर हो गयी। ऋण भी ऋण भी काफी हो गया। यहाँतक कि अनाजके लिये अधिकांश चुका दिया गया। मेरी स्थितिमें काफी भी मैं दूसरोंका मुँह देखने लगा। जिनको मैं गल्ला और परिवर्तन हो गया। मुझे निरुद्यमी, आलसी और अभागे कहनेवाले लोग अब मेरी प्रशंसा करने लगे। रुपया दिया करता था, अब उनके द्वारपर मुझे दौड़ना पड़ता, किंतु इतना होनेपर भी मैंने धैर्य नहीं छोड़ा और यह घटना बिलकुल सच्ची है। रईसीके चक्करमें भगवान्का भरोसा मेरे मनमें ज्यों-का-त्यों बना रहा। मैं अपनी सम्पत्तिका नाश कर चुका था, किंतु आज ईश्वरकी कृपा, गो-माताका आशिष और अपने हाथोंसे काम करनेके

एक दिन चिन्तित-मन चारपाईपर मैं लेटा हुआ था कि मेरी आँख लग गयी। निद्रामें मुझे लगा कि बैल-गाय मुझे कारण मेरी दशा अत्यन्त सुन्दर हो गयी। यदि कोई गो-मारने दौड़ रहे हैं और मनुष्यकी भाषामें बोलते हुए मुझसे पालक कृषक भाई मेरी तरह दरिद्रनारायणके शिकार हो कह रहे हैं कि 'अभी हम तुझे और तंग करेंगे। तूने अपने गये हों, तो उन्हें मेरे पथका अनुसरण करना चाहिये।

खाने-पीनेके सिवा कभी हमारी भी खबर ली है कि हम मैं डंकेकी चोटपर कहता हूँ कि भगवान्पर विश्वास और भूखे या प्यासे हैं ? गोशालामें कभी जाकर देखा भी है कि गो-माताकी सेवासे बुरी-से-बुरी हालत बदलकर अच्छी हो जायगी। —एक गो-सेवक कृषक

वह साफ है या हम गोबर-मूत्रमें पड़े हैं? तू अपने इसी

साधनोपयोगी पत्र (१) मूल्य दिये उपभोग कर पाते हैं। यदि वे अकारण कृपालु

नहीं होते, तो क्या इनपर रोक नहीं लगा देते, क्या टैक्स नहीं

प्रिय महोदय! प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार मालूम हुए। उत्तर इस प्रकार है—

आपको झूठ बोलने और पाप करनेमें जो हिचक

नहीं होती और डर नहीं लगता, इसका तो यह कारण

भगवान् अकारण करुण हैं

है कि उनसे होनेवाले परिणामपर आपका विश्वास नहीं है तथा वर्तमानमें झूठ बोलकर और पाप करके आप

किसी-न-किसी प्रकारकी भोगवासनाकी पूर्ति करना चाहते हैं, पर वास्तवमें यह बड़ी भारी भूल है।

सुखभोगकी इच्छा कभी भी पूरी नहीं हो सकती; क्योंकि

भोगोंकी प्राप्ति इच्छासे नहीं होती। वे तो कर्मफलके रूपमें मिलते हैं और जैसे-जैसे मिलते हैं, इच्छाको बढाते रहते हैं; इस परिस्थितिमें इच्छाकी पूर्ति कैसे हो।

उसकी तो विचारद्वारा ही निवृत्ति हो सकती है। आपने लिखा कि धर्म क्या है और पाप क्या है? उसका मुझे ज्ञान नहीं है, सो ऐसी बात नहीं है। ज्ञान

तो आपको अवश्य है, पर आप उस ज्ञानका आदर नहीं करते। आप समझते हैं कि झूठ बोलना बुरा है—पाप है। झुठ नहीं बोलना चाहिये-ऐसा दुसरोंसे कहते भी

हैं। यदि कोई बोलता है तो उसका झूठ बोलना आपको बुरा भी लगता है, तथापि आप झूठ बोलनेके लिये विवश हो जाते हैं, यही अपने ज्ञानका अनादर करना है। यदि आप जितना जानते हैं, उतने धर्मका पालन

करना आरम्भ कर दें, तो आवश्यक जानकारी स्वयं प्राप्त हो सकती है; यह भगवत्कृपाकी महिमा है। 'भगवान् क्या हैं'—यह जानना नहीं बनता; क्योंकि

भगवान् मनुष्यकी ज्ञानशक्तिके बाहर हैं। भगवान्पर तो विश्वास किया जा सकता है, उनको माना जा सकता है, उनकी महिमा और प्रभावका दर्शनकर, सुनकर, समझकर

और मानकर उनपर निर्भर हुआ जा सकता है।ऐसा करनेपर साधक कृतकृत्य हो सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। भगवान् अकारण ही कृपा करनेवाले हैं, यह ध्रुव सत्य है, तभी तो आप और हम सब लोग जो कि उनको नहीं

मानते वे भी और जो उनको मानते हैं वे भी उनकी बनायी

बाँध देते ? पर वे ऐसा नहीं करते; क्योंकि वे उदारचित्त हैं। जो यह बात मान लेता है कि भगवान् अकारण ही कृपालु हैं, वह तो उन्हींका होकर रहता है, वह फिर

उनको भूल ही कैसे सकता है। आप लिखते हैं कि मुझे भगवान्को पानेकी इच्छा नहीं है, इससे तो स्पष्ट ही मालूम होता है कि न तो

आपको यह विश्वास है कि भगवान् अकारण ही कृपालु हैं, न उनकी महिमाका ही ज्ञान है और न उनकी सत्तापर ही पूरा विश्वास है; क्योंकि जो यह समझता है कि

भगवान् किसको कहते हैं, वह क्या कर सकते हैं, क्या कर रहे हैं, उनमें क्या-क्या गुण हैं, उनको प्राप्त होना क्या है ? इस रहस्यको जाननेवाला भला उनको बिना

प्राप्त किये कैसे रह सकता है? आपकी जो यह मान्यता है कि बिना छल, कपट

और चालाकीके मुसीबत नहीं टलती, यह सर्वथा निराधार है। छल, कपट और चालाकीका ही परिणाम तो मुसीबत है, इसी कारण एक टलती है तो दूसरी आ

जाती है। छल, कपट और चालाकीका सर्वथा त्याग कर देनेपर ही वास्तवमें मुसीबत सदाके लिये टल जाती है, यह समझना चाहिये। आपने लिखा कि मैं क्या हूँ, कौन हूँ, यह समझमें

नहीं आता। इसका तो यह अर्थ होता है कि वास्तवमें आप इसे समझना ही नहीं चाहते। मुसीबत जिसपर आती है, जो उसे टालना चाहता है, जिसे मुसीबतका ज्ञान है, वही आप हैं।

आपकी इच्छा पूर्ण नहीं होती, यह तो उचित ही है,

यदि आपकी या इसी प्रकारके भाववाले अन्य मनुष्योंकी इच्छा पूर्ण होने लगे तो संसारमें सारा काम अव्यवस्थित हो जाय; क्योंकि आपकी इच्छाओंमें तो दूसरोंका अहित और अपना स्वार्थ भरा हुआ है, तभी तो आप पापपूर्ण कर्म

और भले-बुरे सभी मनुष्योंकी निन्दा करते हैं। यदि आपको जीवनसे घृणा होती है, आपके मनमें अपना सुधार करनेकी इच्छा होती है तो समझना चाहिये

िभाग ९४

हुई संबर्धानम् अस्ति असर्या असर्या विमास्मिक्षिक अञ्चर्यक्षी विकास विभाग विभा

संख्या १२] साधनोपयोगी पत्र सुधार होना कठिन नहीं है, दु:खोंसे छूटनेका उपाय तो अधिकारी एकसे नहीं होते। पूर्वोक्त साधन अभ्यासयोग यही ठीक मालूम होता है कि उस दु:खहारी प्रभुकी नहीं है, वह भगवत्-परायण प्रेमी भक्तका साधन है। शरण ग्रहण करके उनके दिये हुए विवेकका आदर करें ४. निष्काम कर्म यदि भगवदर्थ हो, तो उसमें तथा वह काम करें जो हम दूसरोंसे चाहते हैं और वह स्मरण भी है। उसके कर्म स्मरणके विरोधी नहीं होते। कभी न करें जो हम दूसरोंसे नहीं चाहते। अर्थात् स्मरणका सम्बन्ध प्रेमसे है, क्रियासे नहीं। जिसको हम अपने लिये अच्छा समझते हैं, उसको ५. कामनाकी निवृत्ति और निष्काम कर्मका अर्थ सबके लिये अच्छा समझें और जिसे हम अपने लिये बुरा समझ लेनेसे यह उलझन मिट जाती है। जिस कर्ममें समझते हैं, उसे सबके लिये बुरा समझें। शेष प्रभुकृपा। अपने सुखभोगकी और पद एवं अधिकार-पूर्तिकी (२) कामनाका त्याग है, जो दूसरोंके अधिकारकी पूर्ति और विविध प्रश्नोत्तर उनकी हितपूर्ण प्रसन्नताके लिये कर्तव्यपालनके रूपमें प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपके दो पत्र एक किया जाता है या यों समझें कि जो प्रभुकी प्रसन्नताके साथ मिले। आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है— लिये, उन्हींकी आज्ञा और प्रेरणाके अनुसार उन्हींकी कुपासे प्राप्त सामर्थ्य-सामग्रीके द्वारा किया जाता है, वह १. भगवान् रामके स्वभावको जान लेनेवालेके द्वारा भजन अपने-आप हुआ करता है, उसे करना नहीं पडता कर्म निष्कामकर्म है। इस प्रकारका कर्म साधकके प्रत्युत वह उसे भूल नहीं सकता। यहाँ भजनसे अभिप्राय अन्त:करणको शुद्ध करता है, राग-द्वेषका नाश करता है और भगवान्के प्रेमको प्रकट करता है। कामनाकी भगवान्की स्वाभाविक मधुरस्मृति है। 'भज्' धातुका अर्थ सेवा है, वह 'सेवन' स्मृतिके ही अन्तर्गत है। पूर्ण निवृत्ति जिस ज्ञानसे होती है, वह निष्कामकर्मयोगका इसीलिये जप-ध्यान आदिको भी भजन कहा जाता है। फल है, वही ज्ञानयोगका भी फल है; गीता अ० ४ इस दृष्टिसे योग और ज्ञानको भी कोई भजन कहे तो श्लोक ३८, ३९ देखें। कोई बुराई नहीं है; क्योंकि भगवानुके स्वभावको जानना बिना तत्त्वज्ञानके और फलकी कामनासे किया भी तो ज्ञान ही है, जो कि भजनका हेतु है। जानेवाला कर्म, निष्कामकर्म नहीं है। गीता अ० २ श्लोक २. 'मामनुस्मर युध्य च' इसमें मन, वाणी और ४९ देखें। साधन नाम उसीका है, जिसे सर्वसाधारण शरीरद्वारा ऊपरसे क्रियाका भेद दीखनेपर भी वास्तवमें मनुष्य कर सके। प्रकृति, विश्वास, योग्यता और रुचिके भेद नहीं है। जहाँ अपने कर्मींद्वारा उस प्रेमास्पदकी ही भेदसे साधनमें प्रकार-भेद हो सकता है। ६. संगत्यागके लिये न तो आश्रम बदलना आवश्यक पूजा की जाती है, वहाँ सभी क्रियाभेदोंमें अपने प्रियतमका स्मरण गोपियोंकी भाँति निरन्तर रहता है, यह है और न अपने-आप न्याययुक्त प्राप्त हुए संयोगका त्याग ही। आजका समाज चाहे जैसा भी हो, साधकके लिये तो स्वाभाविक नियम है। अत: उसे मनसे कुछ और करना और शरीरसे कुछ और करना नहीं कहा जाता। बिना वह साधनसामग्री है। उसीकी सेवा करके अपने प्रियतमकी मनके क्या युद्धकी क्रिया की जा सकती है? कदापि प्रसन्नता प्राप्त करना उसका मुख्य उद्देश्य होना चाहिये। समाजके साथ ममता और आसक्ति न रहनेपर उसके नहीं। मन तो उसमें भी पूरा-पूरा लगाना पड़ता है, पर जो साधक अपने प्रेमास्पदको सर्वत्र देखता है, उससे वह संयोग और वियोग साधकके लिये हानिकर नहीं हो सकते। छिप कैसे सकता है ? गीता अध्याय ६ श्लोक ३०-३१ इस रहस्यको समझनेवाला साधक अनायास ही वर्तमान देखें। इस तत्त्वको समझ लेनेके बाद अडचन और शंका परिस्थितिमें अपने लक्ष्यकी प्राप्ति कर सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। कठिनाइयाँ सब साधकने स्वयं ही

नहीं रहती। इसीलिये उक्त श्लोकके उत्तरार्धमें कहा है कोई कठिनाई नहीं है। कठिनाइयाँ सब साधकने स्वयं ही कि 'मर्य्याप्तमनोबुद्धिः'। बना रखी हैं। उसमें न तो समाजका दोष है, न सरकारका ३. 'यतो यतो निश्चरित' यह श्लोक एकान्तमें और न ईश्वरका ही। दूसरोंके मत्थे दोष मँढ़कर अपनेको ध्यान करनेके समयका है, कर्मयोगका नहीं। दोनोंके निर्दोष मानना अपने आपको धोखा देना है। शेष प्रभुकृपा।

वतोत्सव-पर्व

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२१, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ-कृष्णपक्ष

ાતાથ	वार	नक्षत्र	ादनाक	मूल, भद्रा, पचक तथा व्रत-पवााद
प्रतिपदा रात्रिमें १२।२ बजेतक	शुक्र	आश्लेषा रात्रिमें ४।० बजेतक	२९ जनवरी	सिंहराशि रात्रिमें ४।० बजेसे।
द्वितीया" ११।३ बजेतक	शनि	मघा 🤫 ३।३३ बजेतक	३० ,,	मूल रात्रिमें ३।३३ बजेतक।
तृतीया '' ९ । ४० बजेतक	रवि	पू० फा० '' २।४५ बजेतक	३१ ,,	भद्रा दिनमें १०। २१ बजेसे रात्रिमें ९। ४० बजेतक, संकष्टी
				श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ८।१९ बजे।
चतुर्थी 🗤 ७ । ५७ बजेतक	सोम	उ० फा० " १। ३७ बजेतक	१ फरवरी	कन्याराशि दिनमें ८। २८ बजेसे।
पंचमी सायं५ ।५६ बजेतक	मंगल	हस्त '' १२।१३ बजेतक	२ ,,	x x x x
षष्ठी दिनमें ३।४४ बजेतक	बुध	चित्रा 🤫 १०।४० बजेतक	३ ,,	भद्रा दिनमें ३। ४४ बजेसे रात्रिमें २। ३५ बजेतक, तुलाराशि
				दिनमें ११।२६ बजेसे।
सप्तमी '' १ । २४ बजेतक	गुरु	स्वाती 🤫 ९।० बजेतक	ሄ <i>יי</i>	अष्टकाश्राद्ध।
अष्टमी <i>"</i> ११ ।१ बजेतक	शुक्र	विशाखा '' ७। १९ बजेतक	५ ,,	वृश्चिकराशि दिनमें १।४३ बजेसे।
नवमी " ८ । ४१ बजेतक	शनि	अनुराधा सायं ५ । ४३ बजेतक	ξ ,,	भद्रा रात्रिमें ७। ३५ बजेसे रात्रिशेष ६। २९ बजेतक, धनिष्ठाका सूर्य

१० ,,

११ "

दिनांक

१२ फरवरी

१४ ,,

१३ ,,

१५

१६

१७

१८ ,,

१९

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२१, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ-शुक्लपक्ष

एकादशी रात्रिमें ४।२८ बजेतक रिव

ज्येष्ठा सायं ४।१६ बजेतक द्वादशी 🗤 २ ।४३ बजेतक सोम मिल दिनमें ३।३ बजेतक

त्रयोदशी " १ । २० बजेतक मंगल पु०षा० " २।१० बजेतक

चतुर्दशी " १२ ।१९ बजेतक उ० षा० १। ३६ बजेतक बुध अमावस्या '' ११ । ४८ बजेतक श्रवण "१।२९ बजेतक गुरु

वार

शुक्र

शनि

रवि

तिथि

प्रतिपदा रात्रिमें ११।४७ बजेतक

द्वितीया,, १२।१७ बजेतक

तृतीया 🗤 १ । १८ बजेतक

द्वादशी 🔑 ३ । ३१ बजेतक

त्रयोदशी 🦙 ३ । २७ बजेतक

चतुर्दशी ,, २।५३ बजेतक

चतुर्थी 🕠 २।४५ बजेतक सोम उ०भा० 🕠 ५ । ५६ बजेतक पंचमी सायं ४।३४ बजेतक मंगल रेवती रात्रिमें ८।८ बजेतक

अश्विनी ,, १०।३८ बजेतक बुध

षष्ठी अहोरात्र षष्ठी प्रात: ६ ।३८ बजेतक भरणी 🕠 १। १५ बजेतक गुरु

सप्तमी दिनमें ८।४६ बजेतक शुक्र कृत्तिका 🕠 ३। ३५ बजेतक

शनि

रोहिणी 🕠 ६ । ११ बजेतक रवि मृगशिरा अहोरात्र

सोम

दशमी 🥠 २।४ बजेतक एकादशी 🔑 ३ । २ बजेतक मंगल

गुरु

नवमी "१२।३८ बजेतक

अष्टमी ,, १० ।४५ बजेतक

मृगशिरा प्रात: ८।१३ बजेतक

आर्द्रा दिनमें ९।४९ बजेतक

बृध

पुनर्वस् ,, १०।५८ बजेतक

नक्षत्र

धनिष्ठा दिनमें १।५१ बजेतक

शतभिषा ,, २।४२ बजेतक

पु०भा० सायं ४।६ बजेतक

पुष्य ,, ११।३५ बजेतक शक्र

आश्लेषा 🔑 ११ । ४३ बजेतक पूर्णिमा ,, १ ।५१ बजेतक |शनि | मघा ,, ११ । २३ बजेतक

२४

२५

२६

२७

मिथुनराशि रात्रि ७। १३ बजेसे।

मूल दिनमें ११।३५ बजेसे।

भद्रा रात्रिमें २। ३४ बजेसे। भद्रा दिनमें ३।२ बजेतक, कर्कराशि रात्रिमें ४।४१ बजेसे, जया एकादशीव्रत (सबका)। प्रदोषव्रत।

११।४३ बजेसे।

दिनमें ११।४५ बजे, मूल सायं ५।४३ बजेसे।

मुल दिनमें ३।३ बजेतक, वैष्णव एकादशीव्रत।

भद्रा दिनमें १२।४९ बजेतक।

कुम्भसंक्रान्ति रात्रिमें १।२२ बजे।

मीनराशि दिनमें ९।४५ बजेसे।

मूल रात्रिमें १०।३८ बजेतक।

मुल सायं ५।५६ बजेसे।

धनुराशि सायं ४। १६ बजेसे, षट्तिला एकादशीव्रत (स्मार्त्त)।

भद्रा रात्रिमें १।२० बजेसे, मकरराशि रात्रिमें ८।१ बजेसे, भौमप्रदोषव्रत।

मौनी अमावस्या, कुम्भराशि रात्रिमें १।४० बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें १।४० बजे।

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा दिनमें २।१ बजेसे रात्रिमें २।४५ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत,

मेषराशि रात्रिमें ८।८ बजेसे, श्रीवसन्तपंचमी, पंचक समाप्त रात्रिमें ८।८ बजे।

वृषराशि प्रात: ७।५३ बजेसे, सायन मीनका सूर्य रात्रिमें ८।३० बजे।

भद्रा दिनमें ८। ४६ बजेसे रात्रिमें ९। ४८ बजेतक, अचलासप्तमी,

भद्रा दिनमें २।५३ बजेसे रात्रिमें २।२३ बजेतक, सिंहराशि दिनमें

माघीपुर्णिमा, माघस्नान समाप्त, मुल दिनमें ११। २३ बजेतक।

रथसप्तमी, शतभिषाका सूर्य दिनमें ३।२२ बजे।

वतोत्सव-पर्व

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२१, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, फाल्गुन-कृष्णपक्ष तिथि वार नक्षत्र दिनांक

संख्या १२]

तृतीया "८।३७ बजेतक

चतुर्थी प्रातः ६। २३ बजेतक बुध

षष्ठी रात्रिमें १। ३८ बजेतक गुरु

शुक्र

शनि

रवि

सोम

मंगल

बुध

ग्रु

शुक्र

शनि

रवि

मंगल

बुध

सप्तमी " ११ । १६ बजेतक

अष्टमी "९। २ बजेतक

नवमी 🗥 ७ । १ बजेतक

दशमी सायं ५।१६ बजेतक

एकादशी दिनमें ३।५२ बजेतक

द्वादशी " २ ।५२ बजेतक

त्रयोदशी 🗤 २ । २२ बजेतक

चतुर्दशी 😗 २।२० बजेतक

अमावस्या " २ । ५१ बजेतक

प्रतिपदा दिनमें ३।५१ बजेतक

द्वितीया सायं ५ । २० बजेतक

तृतीया रात्रिमें ७।८ बजेतक

चतुर्थी <table-cell-rows> ९ । १२ बजेतक

पु०फा० दिनमें १०।४० बजेतक |२८ फरवरी

प्रतिपदा दिनमें १२। २६ बजेतक रिव

पु०षा० ,, १०।४ बजेतक

उ०षा० ,, ९। २६ बजेतक

श्रवण ,, ९।१२ बजेतक

धनिष्ठा 🗤 ९ । २९ बजेतक

पु०भा० ,, ११।३१ बजेतक

उ०भा० रात्रिमें १।१४ बजेतक

अश्वनी रात्रिशेष ५।४९ बजेतक

सोम रिवती 🕠 ३।२४ बजेतक

भरणी अहोरात्र

द्वितीया " १०।३९ बजेतक सोम

कन्याराशि दिनमें ४। २५ बजेसे।

१ मार्च भद्रा रात्रिमें ९।३९ बजेसे। उ०फा० ,, ९। ३६ बजेतक

मंगल हस्त दिनमें ८। १५ बजेतक भद्रा दिनमें ८। ३७ बजेतक, तुलाराशि रात्रिमें ७। ३० बजेसे, संकष्टी २ ,, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९।१५ बजे।

चित्रा प्रातः ६। ४४ बजेतक 3 ,,

भद्रा रात्रिमें १। ३८ बजेसे, वृश्चिकराशि रात्रिमें ९। ५० बजेसे, विशाखा रात्रिमें ६। २५ बजेतक 8 ,,

पूर्व भाद्रपदका सूर्य रात्रिमें ८।५६ बजे। भद्रा दिनमें १२। २६ बजेतक, मूल रात्रिमें १। ४७ बजेसे। अनुराधा 🗤 १ । ४७ बजेतक 4 ,,

ज्येष्ठा ,, १२।१८ बजेतक ξ,,,

प्रदोषव्रत।

धनुराशि रात्रिमें १२।१८ बजेसे, जानकी-जयन्ती। भद्रा रात्रिशेष ६।९ बजेसे, मूल रात्रिमें ११।२ बजेतक। मुल 🗤 ११।२ बजेतक 9 ,,

प्रारम्भ, खरमासारम्भ।

मुल रात्रिशेष ५। ४९ बजेतक।

विजया एकादशीव्रत (सबका)।

भद्रा दिनमें २। २२ बजेसे रात्रिमें २। २० बजेतक, कुंभराशि रात्रिमें ९।२० बजेसे, पंचकारम्भ दिनमें ९।२० बजे, महाशिवरात्रिव्रत।

भद्रा सायं ५।१६ बजेतक, मकरराशि रात्रिमें ३।५५ बजेसे।

मुल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

शतभिषा ,, १०।१५ बजेतक । १२ ,, १३ ,, मीनराशि सायं ५।११ बजेसे, अमावस्या।

मूल रात्रिमें १।१४ बजेसे, मीन संक्रान्ति रात्रिमें ८।३५ बजे, वसन्तऋतु

मेषराशि रात्रिमें ३।२४ बजेसे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें ३।२४ बजे।

भद्रा प्रात: ८। १० बजेसे रात्रिमें ९। १२ बजेतक, **वैनायकी**

श्रीगणेशचतुर्थीवृत, उ०भा० का सूर्य रात्रिशेष ४। ४७ बजे।

सं० २०७७, शक सं० १९४२-१९४३, सन् २०२१, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-वसन्त ऋतु, फाल्गुन-शुक्लपक्ष तिथि दिनांक मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि वार नक्षत्र

,,

१० 11

११ ,,

१४ मार्च

१५

१६

१७

भरणी दिनमें ८। २४ बजेतक वृषराशि दिनमें ३।४ बजेसे। पंचमी ;, ११ ।१८ बजेतक ग्रुरु १८ ,, कृत्तिका ,, ११।१ बजेतक षष्ठी 🗤 १ । २० बजेतक शुक्र १९

सप्तमी ,, ३।५ बजेतक शनि रोहिणी 🕠 १। २६ बजेतक भद्रा रात्रिमें ३।५ बजेसे, मिथुनराशि रात्रिमें २।३१ बजेसे, सायन २०

मेषका सूर्य सायं ५। ३४ बजे।

अष्टमी रात्रिशेष ४।२७ बजेतक मृगशिरा 🕖 ३। ३४ बजेतक भद्रा दिनमें ३। ४५ बजेतक, होलाष्टकारम्भ रवि २१ नवमी ,, ५ । २२ बजेतक आर्द्रा सायं ५।१६ बजेतक सोम शक संवत् १९४३ प्रारम्भ। २२

पुनर्वसु रात्रिमें ६।३२ बजेतक दशमी 🗤 ५ । ४७ बजेतक मंगल **कर्कराशि** दिनमें १२।१२ बजेसे। २३

भद्रा सायं ५ । ४१ बजेसे रात्रिशेष ५ । ३९ बजेतक, आमलकी एकादशीव्रत पुष्य ,, ७।१६ बजेतक एकादशी ग५ । ३९ बजेतक बुध २४ ,,

(स्मार्त्त), मूल रात्रिमें ७।१६ बजेसे।

सिंहराशि रात्रिमें ७।३० बजेसे, एकादशीव्रत (वैष्णव)। ग्रुरु आश्लेषा 🕠 ७ । ३० बजेतक २५

द्वादशी <table-cell-rows> ५ । २ बजेतक त्रयोदशी रात्रिमें ३। ५७ बजेतक मघा 🕠 ७। १५ बजेतक शुक्र प्रदोषव्रत। २६

भद्रा रात्रिमें २।२९ बजेसे, कन्याराशि रात्रिमें १२।२२ बजेसे। शनि पु०फा० ,, ६।३७ बजेतक २७

चतुर्दशी 🕠 २ । २९ बजेतक

भद्रा दिनमें १। ३४ बजेतक, पूर्णिमा, होलिकादाह (प्रदोषमें)। उ०फा० सायं ५।३८ बजेतक पूर्णिमा 🔊 १२ ।४० बजेतक रवि २८

कृपानुभूति मार्गदर्शक

मानव-आकृति दिखायी दी, जो हाथ देकर हमारी टैक्सीको

घटना २६ दिसम्बर २००६ई० की है। मैं अपनी

चार-वर्षीय बेटी और लगभग पैंसठ-वर्षीय ननदजीके साथ काशी-विश्वनाथके दर्शनहेतु वाराणसी गयी थी।

वहींसे हम सुबह टैक्सी लेकर सड़क-मार्गद्वारा संगम-स्नानके लिये प्रयागराज पहुँचे। दोपहर बाद स्नान-ध्यानसे

निवृत्त होकर वहाँसे हमने अयोध्याकी ओर कृच किया। रास्तेमें अवध विश्वविद्यालय दिखा, तो मैंने टैक्सी उस ओर मुड्वा ली। मैं पंजाब विश्वविद्यालयसे संलग्न डी॰ए०वी॰ कॉलेज होशियारपुरमें अंग्रेजी विभागमें एसोसिएट प्रोफेसरके पदपर कार्यरत थी, अत: अवध विश्वविद्यालयके उपकुलपितसे भेंट करनेके उद्देश्यसे मैंने टैक्सी ड्राइवरको

विश्वविद्यालय-परिसरमें चलनेका आदेश दिया। वहाँ कुछ प्रोफेसर साहिबानसे मेरी भेंट हुई और विचारोंका आदान-प्रदान भी हुआ, परंतु उपकुलपित महोदय उस समय किसी कार्यवश विश्वविद्यालयसे बाहर गये थे, अत: उनसे भेंट न हो सकी। करीब छ: बजे शाम हम विश्वविद्यालय-परिसरसे जब बाहर निकले तो अँधेरा होने लगा था। हमारी

टैक्सी अयोध्याकी तरफ रवाना हुई। कुछ ही देरमें घना अँधेरा होने लगा और टैक्सी ड्राइवर सम्भवत: रास्ता भटक गया। हमने अपनी टैक्सीको घने जंगलमें पाया, जहाँ दूर-दूरतक रोशनी या किसी भी तरहके जीवनका कोई निशान नहीं था। उस वीरान रास्तेपर अँधेरेमें टैक्सी भटकने लगी। अनजान रास्ता, मुसलमान टैक्सी ड्राइवर, हम दो महिलाएँ और एक बच्ची क्या करें, कहाँ जायँ ? हमने कुछ स्वर्ण-आभूषण भी पहन रखे थे।

कुछ भी कहें तो वह कोई सीधा जवाब न दे। बेटी घबराकर रोने लगी। उस विषम परिस्थितिमें मैंने भगवान् रामको स्मरण किया और कहा—'हे भगवान्! हम तो आपके दर्शन-हेतु अयोध्या आ रहे हैं। अब हमारी लाज आपके हाथमें है।

हमारा मार्गदर्शन करो।' मेरी ननदजी भी राम नामका

निरन्तर जप करने लगीं।

तरह-तरहके बुरे विचार मनको घेरने लगे। अनिष्टकी

आशंका, घोर आशंका सताने लगी। जब हम डाइवरको

रोक रही थी। मैंने तत्काल टैक्सी रुकवायी तो देखा कि १४ से २० सालका एक किशोर रास्ता रोक रहा था। उसने मुझसे पूछा—'माता! आप कौन हैं, कहाँ जाना है?' मैंने उसे बताया कि हम अयोध्या-दर्शनके लिये आये हैं, पर

फैजाबादसे रास्ता भटक गये हैं। वह किशोर नवयुवक फौरन टैक्सी ड्राइवरके साथवाली अगली सीटपर बैठ गया और रास्ता बताने लगा। उसके दिशा-निर्देशोंपर टैक्सी-ड्राइवर टैक्सी घुमाने लगा। आश्चर्य! लगभग ५ से ७ मिनटोंके भीतर ही हम मुख्य मार्गपर जा पहुँचे। उस युवकने टैक्सी अयोध्याके राम होटलके सामने रुकवा दी और मुझे

कहा कि 'ये माताएँ बड़ी दूरसे अयोध्या आयी हैं। इनके ठहरनेके लिये बढिया कमरा और भोजनादिकी व्यवस्था करवायी जाय।' मैनेजरने होटलके कर्मचारीको भेजकर टैक्सीसे सामान निकलवाया और मेरी ननदजी होटलके कमरेमें सामान रखवाने लगीं। हमने यह समझा कि यह युवक शायद होटलोंका एजेण्ट

साथ लेकर होटल मैनेजरके पास पहुँचा। उसने मैनेजरसे

या कोई ट्रिस्ट गाइड है और यात्रियोंको होटलोंमें कमरा दिलवाकर कमीशन लेता है। होटलके रजिस्टरपर हस्ताक्षर आदि करनेकी औपचारिकताके बाद मैं पीछे मुड़ी, ताकि उस युवकको कमीशन दे सकूँ और उसका धन्यवाद करूँ, परंतु वह नवयुवक कहीं भी नजर न आया। मैंने होटल मैनेजरसे उसके बारेमें पूछा तो उसने अनिभज्ञता जाहिर करते हुए कहा कि 'उस युवकको पहले किसीने भी यहाँ

Hindelisin के अंडिटेनिय डेबारिं हिंगासीं के निवार में कुर का कार्य के मान कि कि स्थान के स्थ

उसे ढूँढ़ना शुरू किया, परंतु वह तो वहाँसे अलोप हो चुका था। स्थानीय निवासी उसके विषयमें कुछ भी नहीं जानते थे। तब जाकर हमें यह समझ आया कि उस अँधेरी रातमें निर्जन वीरान मार्गपर जिसने हमें रास्ता दिखाया, वह कोई और नहीं, स्वयं वह थे, जिनके दर्शनोंके लिये हम आये थे। पर हाय! हमारी मूढ़ मित तब उन्हें पहचान न सकी। सच्चे मनसे पुकारनेपर भगवान् स्वयं आकर

सहायता देते हैं, मार्गदर्शन करते हैं, पर हम उन्हें पहचान

कभी नहीं देखा है।' अब हमारी जिज्ञासा बढी और हमने

पढो, समझो और करो संख्या १२] पढ़ो, समझो और करो मैंने साधु बाबाके चेहरेको देखा। उनके केश, दाढी (१) कृष्णभक्तोंकी सेवा भी कृष्णभक्ति है और चेहरेकी आकृति एवं वर्णको देखा। उनकी आँखोंमें अनेक बार मैंने वृन्दावनकी यात्रा की है। एक बार झाँककर देखा। उनके शरीरका गठन, उनके हाथ एवं वृन्दावनके तीर्थोंकी यात्रा करनेके लिये पर्याप्त समय उँगलियोंकी रचनाको देखा। लक्षण देखकर लगा कि यह लेकर निकला। वृन्दावनमें मेरा पडाव चार सम्प्रदाय कोई सिद्धपुरुष है, सच्चा साधु है। उनकी आँखें तो भक्तकी आश्रममें था। महत्त्वपूर्ण दर्शनीय स्थानोंका भली-भाँति आँखें हैं। ऐसा पुरुष, ऐसा साधु चायका ठेला क्यों चलाता दर्शन करनेके उद्देश्यसे एक गाइडको भी साथ ले लिया। है ? अवश्य इसमें कुछ रहस्य है, कोई गहरा भेद है। थोड़ा चलनेके पश्चात् मुझे पता चला कि मेरे गाइडकी भेद तो है, परंतु रहस्योंकी तुरंत थाह नहीं ली जा आँखें बहुत कमजोर हैं। मुश्किलसे थोडा देख सकता सकती। सभी सवाल कभी भी नहीं पूछे जा सकते। है, और उसीके सहारे वह दर्शनार्थियोंके मार्गदर्शकका उसके लिये अनुकूल समयकी प्रतीक्षा करनी पडती है। कार्य करता है। थोडी बात करनेपर पता चला कि आँखें मेरे गाइडने चाय समाप्त कर दी थी। होटलके कमजोर होनेके बावजूद वृन्दावनके तीर्थोंके बारेमें मालिक साधु बाबाको चायके पैसे देकर। हम आगे बढ़े। उसको गहरी जानकारी है। वह मुझे एकके-बाद-एक रास्तेमें एक स्थानपर रासलीला देखने रुक गये। वृन्दावनमें कुछ स्थानोंपर नित्य रासलीला होती है।छोटे बच्चे श्रीकृष्णकी दर्शनीय स्थानोंपर ले जाता; उस स्थानका इतिहास, माहात्म्य, सम्प्रदाय आदिकी प्रामाणिक एवं मर्मस्पर्शी भिन्न-भिन्न लीलाओंको अत्यन्त सुन्दर ढंगसे प्रस्तुत करते हैं। यात्री इस लीलाके दर्शनोंके लिये आते हैं। लीलाका सूचना वह मुझे देता। वृन्दावनकी सँकरी गलियोंमेंसे गुजरते हुए एवं दर्शनीय स्थानोंके दर्शन करते हुए हम प्रारम्भ होनेमें कुछ देर थी। शाम ढलने लगी थी। मेरे गाइड रातके अँधेरेमें तो बिलकुल नहीं देख सकते थे, अत: अँधेरा आगे बढे। वंशीवट, ज्ञानगुदडी, मीरा मन्दिर, रंगनाथ मन्दिर, कालियादह, केशीघाट, रास चौक आदि स्थानोंके होनेसे पहले उन्हें अपने स्थानपर पहुँच जाना जरूरी था। दर्शन करते हुए हम जब बाँकेबिहारीके दर्शनोंके लिये उन्होंने जानेके लिये अनुमति चाही, तो मैंने अनुमति दे दी। जाने लगे तो एक सँकरे बाजारके एक कोनेमें एक रासलीलाके प्रारम्भिक हिस्सेके दर्शन करके, बाँकेबिहारी चायका ठेला देखा। मेरे गाइडने मुझसे कहा—'महाराज! महाराजके दर्शन किये, आरतीमें उपस्थित रहकर मेरी यहाँकी चाय बहुत अच्छी होती है। सारे व्रजक्षेत्रमें इतनी आजकी यात्रा समाप्त हो गयी, और अब मुझे चार सम्प्रदाय जायकेदार चाय कहीं भी नहीं मिलेगी।' आश्रमके पडावपर पहँचना था। मैंने उसे समझाया कि मैं तो चाय नहीं पीता। परंतु मेरा स्वाभाविक क्रम बाँकेबिहारी महाराजके दर्शन यदि उसे चाय पीनी है, तो थोड़ी देर यहाँ बैठनेपर मुझे करके सीधे ही चार सम्प्रदाय आश्रममें पहुँचना था, परंतु कोई एतराज नहीं है। अब इस क्रममें एक अन्य कार्यक्रमकी बढ़ोत्तरी हो गयी में यह देखकर आश्चर्यचिकत हो गया कि यह थी। चायका ठेला चलानेवाले साधु बाबाका रहस्य क्या चायका ठेला एक साधुका है। साधु महाराज ही चाय है—यह जाननेकी बेचैनी थी। बाँकेबिहारी महाराजके दर्शन करके आश्रम जानेके बनाते हैं, ग्राहकोंको चाय देते हैं, चायके बर्तन वापस लेते हैं, और चायके पैसे भी वही लेते हैं। चायके ठेलेके सामने बदले मैं सीधा ही साधु बाबाके चायके होटलकी ओर चल दिया। वहाँ जाकर देखा तो चिकत हो गया। साधु ही एक बडी दुकान है। उसमें कुछ कुर्सियाँ रखी हुई हैं। महाराज बहुत ध्यानसे हाथसे रगड्-रगड्कर होटलकी चाय पीनेके लिये आनेवाले लोग इस कक्षमें कुर्सीपर सफाई कर रहे थे। जिस प्रकार सुनार अपनी दुकानकी बैठकर चाय पीते हैं।

िभाग ९४ अच्छी तरहसे रगडकर सफाई करता है, उसी प्रकार साधु उनकी जीवनशैली एवं साधनाके स्वरूपको समझनेकी महाराज एक छोटी-सी झाड़से दुकान-होटलकी रगड़कर कोशिश की। सफाई कर रहे थे। मैं दरवार्जेंके पास ही रुक गया। उन्होंने यह साधु एक सच्चे कृष्णभक्त साधु हैं। उनकी मेरी उपस्थिति देखकर मुसकान बिखेर दी। सारी धूल आकृति, मुख एवं आँखोंको देखकर उनके बारेमें मैंने जो एकत्रित करके उन्होंने एक छोटे स्वच्छ सुन्दर कपड़ेके सोचा था, वह सही सिद्ध हुआ। वृन्दावन आनेवाले यात्री ट्रकडेमें बाँधकर छोटी-सी पोटली तैयार कर दी। वह वैष्णव होते हैं, कृष्णभक्त होते हैं। उनकी सेवा करना पोटली थैलीमें रख दी। होटल बन्द कर दिया। ताला नहीं भक्तिका ही एक स्वरूप है। उनकी सेवा की जाय, उन्हें लगाया, केवल जंजीर लगा दी। मैं उनका यह बर्ताव अच्छी तरहसे बनायी गयी चाय देना एक सेवा है। गायका द्ध एवं श्रेष्ठ प्रकारकी चायकी पत्तियाँ वे खरीदते हैं। समझ नहीं सका। रहस्य सुलझनेके बदले अधिक गहरा हो गया। इस होटलकी धूलको एकत्रित करके पोटलीमें अत्यन्त लगनसे वे चाय बनाते हैं। आगन्तुक वैष्णव भक्तोंकी सेवा करनेके भावसे वे उन्हें चाय परोसते हैं। क्यों रख दी ? सुनार तो इसलिये धूल एकत्रित करता है; किसीसे पैसे नहीं माँगते। अधिकांश यात्री पैसे देते हैं, परंतु क्योंकि धूलमें स्वर्णके कुछ कण हो सकते हैं। उस यदि कोई पैसे नहीं देता, तो साधु बाबा पैसे माँगते नहीं, धूलको धुलवाकर सुनार उसमेंसे स्वर्ण प्राप्त करता है। स्वर्णकी धुलकी पोटलीका कारण तो समझ सकते हैं, बल्कि उनके इस व्यवहारसे अधिक प्रसन्न हो जाते हैं। परंतु हमारे यह साधु महाराज होटलकी धूल क्यों एकत्रित वैष्णवोंकी चरणरजसे शरीर, मन पवित्र होता है, करते हैं ? उसमें कौन-से स्वर्णके कण हो सकते हैं ? ऐसी भावनासे साधु बाबा पुरे दिनके दौरान एकत्रित मैंने देखा कि अब होटल बन्द करके वे निकल वैष्णवोंकी चरणरज एकत्रित कर लेते हैं, और वही रहे हैं। मैंने उन्हें प्रणाम करके 'जय राधे' कहा। उन्होंने रजकण शामको यमुना-स्नानके पश्चात् अपने शरीरपर भी प्रणामकी मुद्रामें 'जय राधे' कहा। मैंने उनसे पूछा— मल लेते हैं। रातभर वे यह पावन रजकण अपने शरीरपर 'महाराज! आप कहाँ विराजमान होते हैं?' उन्होंने ही रहने देते हैं और प्रात: वे यमुना-स्नान करते हैं। अत्यन्त सहज सरलभावसे कहा—'केशीघाटके पास सुबह दो घंटे और शामको दो घंटे वे अपना यह छोटी-सी कुटिया है। आप आइये, सत्संग होगा।' वैष्णव सेवा होटल खोलते हैं। चाय बनाते समय एवं हम दोनों साथ ही निकल पड़े। बीच रास्तेमें थोडी परोसते समय वे कृष्ण नामका जप जारी रखते हैं। इन देरके लिये मैं चार सम्प्रदाय आश्रममें गया। फिर हम चार घंटोंके सिवा अन्य समय साधु महाराज श्रीमद्भागवतका पाठ, श्रीकृष्णकी सेवा-पूजा एवं कृष्णनामका जप करते दोनों उनके केशीघाटपर स्थित निवास-स्थानपर जानेके लिये चल पड़े। यमुनाके तटपर एक छोटी कुटिया है। रहते हैं। भावना फलित होती है। भावग्राही जनार्दनः। वहाँ बिजलीकी सुविधा नहीं है। लालटेनके सहारे काम चलता है। उन्होंने रसोई बनायी। हम दोनोंने भोजन साधक जो क्रिया करता है, उस क्रियाके बहिरंग स्वरूपसे भी उस क्रियामें निहित उसकी भावना कैसी है, यह विशेष किया। भोजनके पश्चात् नित्य-क्रमानुसार वे यमुना-स्नानके लिये निकले। हम दोनोंने यमुना-स्नान किया। महत्त्वपूर्ण है। वैष्णवोंकी सेवाके लिये चायका होटल स्नानके बाद उन्होंने होटलकी सफाई करते समय जो चलाना, उनके सत्संगको कृष्णभक्तोंका सत्संग मानना, उनकी चरणरजको वैष्णव चरणरज मानकर शरीरपर धूल एकत्रित करके पोटली बनायी थी, वह खोलकर उसमें स्थित धूल अपने सारे शरीरपर मल ली। वस्त्र धारण करना—यह भावना उनकी साधनाका केन्द्रीय तत्त्व धारण करके हम उनकी कुटियापर गये। कुटियाके बाहर है। उनकी यह पद्धति देखकर कोई उन्हें दीवाना मान सकता है, परंतु अध्यात्मपथ तो दीवानोंके लिये ही है। आसन बिछाकर, यमुनाजीके सम्मुख हम बैठ गये। उनके साथ जो सत्संग हुआ, उसके सहारे मैंने वृन्दावन व्यवहारचत्र, बृद्धिवादी लोगोंके लिये नहीं है।

संख्या १२] पढ़ो, स	मझो और करो ४५
<u> </u>	. * * * * * * * * * * * * * * * * * * *
वृन्दावन तो दीवानोंकी ही दुनिया है। बुद्धिवादियोंके लि	ये डाला गया नहीं तो आज सभीके प्राण ले लेता।
तो कोई विद्यापीठ ही ठीक है।— भानदेव	सुनते ही प्रभु दयार्द्र हो गये और नेत्र अश्रुसिक्त
(7)	हो गये। कुछ बोले नहीं, मौन तो पहलेसे ही थे
हिंसक प्राणीके प्रति भी करुणा	फलाहार पानेके लिये निवेदन करनेपर, अनिच्छा व्यक्त
रखना ही मनुष्यता है	कर दी और विश्राम-कक्षमें चले गये। गम्भीर मुद्र
स्वामी श्रीरामहर्षणदासजी महाराज जिस सम	य देखकर किसीका भी साहस नहीं हुआ कुछ कहनेका
मार्कण्डेय आश्रम (सोन महानदीके पावन संगम)-र	hl अनाहार ही सायंकाल नियमके लिये बैठ गये। गम्भी
सुरम्य वनस्थलीमें एकान्त भजन में निरत थे, उन्हीं दि	नों मुखमुद्रा देखकर उस समय भी किसीका साहस नर्ह
प्रभुकी कुटिया (पी. डब्लू. डी. के गैंग हट)-के पी	छे हुआ कुछ कहनेका। सायंकालीन सूर्यास्तके पश्चात् जब
बनी कोठरी (छोटे कमरे)-में भण्डारकक्ष था, जिस	में प्रभुका मौन टूटा, तब सभी सेवकोंको बुलाया औ
आटा, घी, चावल, दाल इत्यादि दैनिक उपयोग	nी अपनी खीझ प्रगट करते हुए बोले—
सामग्री रहती थी। उसी कोठरीमें एक दिन एक का	ता 'आप सब लोग मनुष्य कहलानेके अधिकारी नर्ह
विषधर सर्प घुस गया। चूँकि मार्कण्डेय आश्रम पूर्ण	त: हैं। जिसमें मनुष्यता न हो, वह किस बातका मनुष्य है—
वनक्षेत्र ही था, अतः वहाँ जीव-जन्तुओंका साम्रा	न्य हमारे शिष्य कहलाते हो और जीवहत्या करनेमें आपके
स्वाभाविक ही था। सर्प घुस ही नहीं गया, बिल	क किंचित् भी संकोच नहीं हुआ ? यह तो आश्रम है, जह
पूर्णरूपेण आसन जमाकर बैठ गया, निकलनेका तो न	म अहिंसाकी प्रतिष्ठा होती है, वहाँ सभी जीव वैर त्याग
ही नहीं ले रहा था। यह भी पता नहीं था कि उ	स देते हैं। आप लोग मनुष्य कहलाते हैं और मूक
कमरेमें वह कबसे घुसा बैठा था!	प्राणियोंके साथ अकारण वैरभावकी प्रतिष्ठा करते हैं
प्रात:काल जब सेवक कुछ निकालनेके लि	ये कोई प्राणी भटककर कुछ देरके लिये यदि आपर्क
भण्डारमें गये, तो नागराजको देखकर चीखकर बा	हर छायामें आ ही गया, तो उसे मार ही डाला जाय? यह
निकल आये। अब सभी सेवक नागराजके निकलनेव	ही कोई मानवता है ? माना कि क्रूर स्वभाववाला जीव है
प्रतीक्षा करने लगे, अब निकलते हैं, अब निकलते हैं, प	3 3 3 3
दस-ग्यारह बज गये और नागराजने तो पूरी कोठरी	में होते। अभी नहीं गया था, तो कुछ देर बाद चला जाता
अपना साम्राज्य ही जमा लिया था, और नहीं निकले। प्र	भु जब आहट और शोर होता, तो समय देखकर स्वयं र्ह
तो भजनमें बैठ चुके थे, उन्हें तो अब दो बजेसे पह	ले निकल जाता। सभी प्राणी निरापद स्थानमें ही रहन
निकलना ही नहीं है। समस्या आयी कि प्रभुके लि	ये चाहते हैं।'
फलाहार (भोजन) कैसे बने ? क्योंकि सारी सामग्री	तो श्रीस्वामीजी महाराजके दोनों नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित
उसी कक्षमें ही रखी थी। लाठी-डंडा पीटा गया, आव	ज हो रहे थे। अन्तमें सभी सेवक रोते हुए बड़ी देरतक
की गयी, फिर भी नागराज बाहर निकलनेका नाम ही न	हीं चरणोंमें पड़े रहे। कान पकड़कर उठक–बैठककर कह
ले रहे थे। अन्ततः कुछ साहसी सेवकोंने डंडा उठा	या कि प्रभो! अब कभी ऐसा नहीं होगा, इस अपराधको
और कोठरीमें घुसकर उसे मार डाला।	क्षमा कर दें। तब क्रोध शान्त हुआ, पुन: कुछ
श्रीस्वामीजी महाराज जब अपने नियमसे उठव	न्र सर्पमुक्तिके लिये भगवन्नाम-संकीर्तन कराया। उस दिन
हाथ-मुँह धोकर विराजे, तो सेवकोंमेंसे ही किसीने य	ह रात्रिमें भी प्रभुने फलाहारका सेवन नहीं किया।
वृत्तान्त श्रीचरणोंमें निवेदित कर दिया कि आज बर्	त धन्य है, स्वामीजी महाराजकी करुणा, कृपा।
बड़ा साँप मार डाला गया। बहुत भयंकर सर्प था, म	ार —पं० रामायण प्रसाद गौतम
	₩◆₩

मनन करने योग्य

जुआ अनर्थकी जड़ है

निषध देशमें वीरसेनके पुत्र नल नामके एक राजा हो चुके हैं। वे बड़े गुणवान्, परम सुन्दर, सत्यवादी,

जितेन्द्रिय, सबके प्रिय, वेदज्ञ एवं ब्राह्मणभक्त थे। वे

वीर, योद्धा, उदार और प्रबल पराक्रमी भी थे। इतने सब सद्गुण होते हुए भी उन्हें जुआ खेलनेका दुर्गुण था।

उनकी पत्नीका नाम था दमयन्ती। दमयन्ती लक्ष्मीके

समान रूपवती थी।

एक दिन राजा नल सन्ध्याके समय लघुशंकासे निवृत्त होकर पैर धोये बिना ही आचमन करके

सन्ध्या-वन्दन करने बैठ गये। यह अपवित्र अवस्था देखकर कलियुग उनके शरीरमें प्रवेश कर गया। साथ

ही दूसरा रूप धारण करके वह पुष्करके पास गया और बोला—'तुम नलके साथ जुआ खेलो और मेरी

सहायतासे जुएमें राजा नलको जीतकर निषध देशका राज्य प्राप्त कर लो।' पुष्कर उसकी बात स्वीकार

करके नलके पास गया। जब पुष्करने राजा नलसे बार-बार जुआ खेलनेका आग्रह किया, तब राजा नल दमयन्तीके सामने अपने भाईकी बार-बारकी ललकारको

सह न सके। उन्होंने उसी समय पासे खेलनेका निश्चय कर लिया। उस समय नलके शरीरमें कलियुग घुसा हुआ था; इसलिये राजा नल दावँमें सोना, चाँदी,



प्रजा और मन्त्रियोंने बड़ी व्याकुलताके साथ राजा

नलसे मिलकर जुएको रोकना चाहा और आकर फाटकके सामने खड़े हो गये। रानी दमयन्ती स्वयं दु:खके मारे दुर्बल और अचेत हुई जा रही थी। उसने

आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद कण्ठसे महाराजके सामने निवेदन किया—'स्वामी! नगरकी राजभक्त प्रजा और मन्त्रिमण्डलके लोग आपसे मिलने आये हैं और ड्योढीपर

खड़े हैं। आप उनसे मिल लीजिये।' परंतु नल कलियुगका आवेश होनेके कारण कुछ भी नहीं बोले।

मन्त्रिमण्डल और प्रजाके लोग शोकग्रस्त होकर लौट गये। पुष्कर और नलमें कई महीनोंतक जुआ होता रहा तथा राजा नल बराबर हारते गये। सारा धन

हाथसे निकल गया। जब दमयन्तीको इस बातका पता चला, तब उसने बृहत्सेना नामकी धायके द्वारा राजा नलके सारिथ वार्ष्णेयको बुलवाया और उससे कहा-'सारथि! तुम राजाके प्रेमपात्र हो। अब यह बात

हैं। इसलिये तुम घोड़ोंको रथमें जोड़ लो और मेरे दोनों बच्चोंको रथमें बैठाकर कुण्डिननगरमें ले जाओ। तुम रथ और घोडोंको भी वहीं छोड देना। तुम्हारी इच्छा हो तो वहीं रहना। नहीं तो कहीं दुसरी जगह

चले जाना।' वार्ष्णिय सारथिके चले जानेके बाद पुष्करने पासोंके खेलमें राजा नलका राज्य और धन ले लिया। उसने नलको

सम्बोधन करके हँसते हुए कहा—'और जुआ खेलोगे?' परंतु तुम्हारे पास दावँपर लगानेके लिये तो कुछ है ही नहीं। यदि तुम दमयन्तीको दावँपर लगानेयोग्य समझो तो फिर खेल हो। नलका हृदय फटने लगा। वे पुष्करसे कुछ भी नहीं बोले। उन्होंने अपने शरीरसे सब वस्त्राभूषण उतार

तुमसे छिपी नहीं है कि महाराज बड़े संकटमें पड़ गये

दिये और केवल एक वस्त्र पहने नगरसे बाहर निकले। दमयन्तीने भी केवल एक साड़ी पहनकर अपने पतिका अनुगमन किया। इस प्रकार जुआ खेलनेके कारण उनकी

रभांत्रसद्वाहम्भाविक्तरस्रोत्रक्कराव्हाने । उत्तर्भाते सार्वे स्वत्याने स्य

(भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र)

'कल्याण'

-के ९४वें वर्ष (वि०सं० २०७६-७७, सन् २०२० ई०)-के दूसरे अङ्कसे बारहवें अङ्कतकके

निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची (विशेषाङ्कको विषय-सूची उसके आरम्भमें देखनी चाहिये, वह इसमें सम्मिलित नहीं है।)

निबन्ध-सूची

विषय

पृष्ठ-संख्या

स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) सं०३-पृ०२८ ७- आचरण-शुद्धिमें बोधकथाओंकी भूमिका (श्रीसुरेन्द्रजी माहेश्वरी) सं०३-पृ०३५ ८- आचार: परमो धर्म: ' [—सम्पादक] सं०४-पृ०५० ९- आठ पापोंका घड़ा (प्रेमप्रकाशी संत श्रीमोनूरामजी) ... सं०२-पृ०२२ १०- आत्मनिवेदन(ब्रह्मलीनपरमश्रद्धेयश्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०३-पृ०७ ११- आत्मविकासके सोलह सूत्र (श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी) सं०११-पृ०३१ १२- आध्यात्मिक प्रश्नोत्तर (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०६-पृ०११ १३- आनन्दभूमि वृन्दावन एवं कृष्णका वेणुगीत (पद्मश्री प्रो० श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र) सं०४-प०१९ १४- आयुर्वेदके अनुसार स्वास्थ्यका शत्रु है क्रोध (प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खङ्) सं०१०-पृ०२६ १५- आवरणचित्र-परिचय— धुन्धुकारीकी मुक्ति सं०२-पृ०६, परब्रह्म परमात्माकी बाल-क्रीड़ा सं०३-पु०६,यज्ञीय संस्कृति सं०४-पु०६, श्रीरामराज्याभिषेक सं०५-पृ०६, श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र और श्रीजगन्नाथजी सं०६-पृ०६, शिव-महिमा सं०७-पु०६, श्रीकृष्णका मित्रप्रेम सं०८-पृ०६, श्रीरामजन्मभूमि अयोध्याका इतिहास सं०९-पृ०६, भगवान् श्रीरामकी बालछवि सं०१०-पृ०६, भगवती महालक्ष्मीजी सं०११-पृ०६, गीताज्ञानका पुनर्स्मरण सं०१२-पृ०६ १६- आसुरी खान-पान—रोगोंको निमन्त्रण सं०९-पृ०१९ १७- ईश्वरका बोधक शब्द 'प्रणव' (डॉ० श्रीइन्द्रमोहनजी झा 'सच्चन', पी-एच०डी० (आयुर्वेद), डिप्लोमा इन योग) सं०४-पृ०२५ १८- उत्तम पति प्राप्त करनेका साधनस्वरूप व्रत...... सं०३-पृ०१४

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०८-पृ०७

विषय

१९- एक ही परमात्मा

१- अंग्रेजीके कवियोंपर गीताका प्रभाव

(डॉ० श्रीरामशंकरजी द्विवेदी) सं०१२-पृ०२०

एल.एल.एम., पी-एच.डी.) सं०९-प०२५

बी॰काम॰, एल-एल॰बी॰) सं०१२-पृ०१८

२- अच्युत, अनन्त और गोविन्द-नामकी महिमा सं० ८-पृ० ३८

३- अमृत-कण..... सं०८-पृ०११

४- अयोध्या-फैसला—कुछ अनकही बातें [सम-सामियक] (डॉ० श्रीसन्तोष कुमारजी तिवारी, एम.एस-सी.,

६- असंग रहो और भगवानुको अपना मानो (ब्रह्मलीन श्रद्धेय

५- 'अवसि चलिअ बन'(श्रीसंजीवकुमारजी भारद्वाज,

२०- कल्याण - सं०२-पृ०५, सं०३-पृ०५, सं०४-पृ०५, सं०५-पृ०५, सं०६-पृ०५, सं०७-पृ०५, सं०८-पृ०५, सं०९-पृ०५, सं०१०-पृ०५, सं०११-पृ०५, सं०१२-पृ०५ २१- कल्याणका आगामी ९५वें वर्ष (सन् २०२१ ई०)-का

पृष्ठ-संख्या

विशेषाङ्क—'श्रीगणेशपुराणाङ्क'..... सं०६-पृ०४९ २२- कलियुगमें साक्षात् कामधेनु [गो-चिन्तन] सं०११-पृ०४१ २३- **कृपानुभूति—** सं०२-पृ०४६, सं०३-पृ०४६, सं०४-पृ०४५,

सं०५-पु०४६, सं०६-पु०४४, सं०७-पु०४६, सं०८-पु०४३, सं०९-पु०४६, सं०१०-पु०४६, सं०११-पु०४६, सं०१२-पु०४२ २४- गायके चरनेमें रुकावट डालनेके कारण नरक-दर्शन..... सं०४-पृ०४१

२५- गृहस्थाश्रम धन्य है ! स०५-पृ०३३ २६- गोपी-हृदयमें प्रेमसमुद्र (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सं०१०-पृ०१३ २७- गोसेवा (श्रीगोपीनाथजी पारीक 'गोपेश ') सं०२-पु०४०

२८- गौओंकी सेवा सं०२-पृ०४२

२९- गोमाताको सेवासे पुनरुत्थान [गो-चिन्तन] सं०१२-पृ०३७ ३०- गोमाताके प्रति कृतज्ञ भाव रखें [गो-चिन्तन]

(श्रीअशोकजी कोठारी) सं०७, पृ०४१ ३१- गोवंशकी दुर्दशा—कारण एवं निवारण [गो-चिन्तन]

(श्रीराजीवजी गुप्ता) सं०५-पृ०४० ३२- गोसेवाके फलस्वरूप प्राण-रक्षा [गो-चिन्तन] सं०६-पृ०४० ३३- गोस्वामी तुलसीदासजीकी नाम-निष्ठा

(डॉ॰ श्रीमती पुष्पारानीजी गर्ग) सं०३-प०२२

(महात्मा श्रीनारायणस्वामीजी). सं०८-पृ०२०

(विद्यावाचस्पित डॉ॰ श्रीदिनेशचन्द्रजी उपाध्याय) सं०७-पृ०१८ ३४- गोस्वामी तुलसीदासजीका वर्षा-वर्णन

(डॉ० श्रीरोहिताश्वकुमारजी अस्थाना) सं०८-पृ०२१ ३५- चार मित्र [बोध-कथा]

३६- छ: महीनेमें ब्रह्मप्राप्तिके साधन सं०४-पृ०१६ ३७- छान्दोग्योपनिषद् और श्रीकृष्ण

३८- जज नीलमाधव बनर्जीकी अनुठी नैतिकता [प्रेरक प्रसंग] सं०६-पृ०१५ ३९- जीव क्या है और माया क्या है ?

(श्रीरणविजयसिंहजी) सं०१२-पृ०२७ ४०- जीवनका लक्ष्य-प्रभुभक्ति एवं जनसेवा [प्रेरक-प्रसंग] (श्रीशिवकुमारजी गोयल) सं०५-पृ०३०

४१- जीवन्मुक्त महात्माके लक्षण (डॉ० श्री के०डी० शर्मा) सं०६-प०२४

እጸ	कल्प	याण [भाग ९४
95 95 95 9		**************************************
85-	जीव-शिक्षा-सिद्धान्त [स्वामी श्रीहरिदासकृत अष्टादश	अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ) सं०३-पृ०२५
	पद] सं०२-पृ०२५, सं०३-पृ०३८	६४- पातिव्रत्यकी महिमा
\ 3 -	तीर्थ-दर्शन—	(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०११-पृ०७
	[क] 'अब चित चेति चित्रकूटहि चलु'	६५- पाप और पुण्य (श्रीअर्जुनजी पंजाबी) सं०८-पृ०३१
	(डॉ० श्रीअनुजप्रतापिसंहजी, डी०लिट०) सं०७-पृ०३०	६६- पुण्यकर्म भाग्यको बदल देता है सं०२-पृ०२३
	[ख] केरलस्थित जटायुतीर्थ—जटायुमंगलम्	६७– प्यासी गौको जल पीनेसे रोकनेके कारण पुत्रहीनता सं०३–पृ०४१
	(प्रो० श्रीलम्बोधरनजी पिल्लै बी०) सं०१०-पृ०२८	६८- प्रभुमें विश्वास कैसे बढ़े ? (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी
	[ग] ग्वालियरका शनिधाम—शनिश्चरा सं०१२-प०३१	श्रीशरणानन्दजी महाराज) सं०४-पृ०४०
	[घ] तमिलनाडुका कन्याकुमारी शक्तिपीठ	६९- प्रलय नहीं, लयके देवता हैं भैरवजी
	्र (श्रीसुदर्शनजी अवस्थी) सं०११-पृ०३४	(श्रीसलिलजी पाण्डेय) सं०१२-पृ०२२
	[ङ] महाशक्ति आदिपीठ विन्ध्यवासिनी	७०– प्रसन्नताका रहस्य
	्र (श्रीदीनानाथजी दुबे) सं०५-पृ०२३	(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) सं० ११, पृ० ४०
	[च] रामाश्वमेधकी पुण्यभूमि 'नैमिषारण्य'	७१- प्रेम-तत्त्व (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी
	(डॉ॰ श्रीरमेशमंगलजी वाजपेयी) सं०८-पृ०२७	महाराज) सं०५-पृ०१०
	[छ] वाराणसी—एक तात्त्विक विवेचन	७२- भगवती लक्ष्मीके ऐहिक वास-स्थान
	(प्रो० श्रीजनार्दनजी मिश्र 'पंकज') सं०९-पृ०३२	(स्वामी श्रीरामराज्यम्जी महाराज) सं०११-पृ०२३
	[ज] सिद्ध शक्तिपीठ देवीपाटन	७३- भगवान्की प्राप्ति करानेवाले उत्तम गुण और आचरण
	(श्रीचरणजीतजी 'चन्द्रेश') सं०४-पृ०३३	(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०१०-पृ०७
88-	तीर्थसेवन कैसे करें ? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी	७४- भगवान् भावके अधीन हैं
	श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सं०४-पृ०१२	(आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा) सं०२-पृ०२१
ሄ ५–	दान-रहस्यको निरूपित करनेवाली कतिपय बोधकथाएँ	७५- भगवत्-सत्ताका बोध करानेवाली कुछ घटनाएँ (नित्यलीलालीन
٠,	(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०२-पृ०८	श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सं०२-पृ०१५
XE-	दीन-दुखियोंके प्रति कर्तव्य (नित्यलीलालीन श्रद्धेय	७६- भगवान्का मंगल विधान [सत्य घटना] (नित्यलीलालीन
-4	भाईजी श्रीहनमानप्रसादजी पोद्दार) सं०११-प०१३	श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सं०९–पृ०११

७७- भक्तके लक्षण (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी

७९- भगवत्प्राप्तिकी साधनामें आत्मनिवेदनकी भूमिका

८०- भगवान्का स्वरूप (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी

८१- भगवान् शिवकी शरणागितसे परम कल्याणकी

८४- भारतीय अध्यात्म-सम्बन्धी श्रीअरविन्दकी

८६- मन-इन्द्रियोंको वशमें करके परमात्माको प्राप्त करे

७८- भगवत्कृपा—स्वरूप-चिन्तन

८२- भवितव्यता [बोध-कथा]

८३- भारतकी आत्मा—संस्कृत

८५- भोग और प्रसाद

८९- मन्दिर-भक्तिके द्वार

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सं०३-पृ०११

(आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय') सं०८-पृ०२५

(ब्रह्मलीन परमश्रद्धेयश्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०४-पृ०७

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सं०८-पृ०१०

प्राप्ति सं०७-पृ०२९

(श्रीकन्हैयासिंहजी 'बिशेन') सं०३-पृ०१८

(वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी) सं०२-पृ०३५

चिन्तन-दृष्टि (श्रीहरिश्चन्द्रजी श्रीवास्तव) सं०६-पृ०१७

(आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय') सं०१२-पृ०१७

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०९-पृ०७

सं०५-पृ०५०, सं०६-पृ०४८, सं०७-पृ०५०, सं०८-पृ०४८, सं०९-

(डॉ० श्रीगोपाल दामोदरजी फेगडे)..... सं०५-पृ०२८

सिहोरवाले) सं०१०-पृ०१४

९१– मरणोपरान्तकी क्रिया (श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास) .. सं०९-पृ०१३

८७- मनके जीते जीत (डॉ० श्रीसुनीलकुमारजी सारस्वत) .. सं०९-पृ०२९

८८- मनन करने योग्य—सं०२-पृ०५०, सं०३-पृ०५०, सं०४-पृ०४९,

पृ०५०, सं०१०-पृ०५०, सं०११-पृ०५०, सं०१२-पृ०४६

९०- ममता (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती,

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सं०११-पृ०१३

(पं० श्रीहनूमानजी शर्मा) सं०३-पृ०१५

श्रीशरणानन्दजी महाराज) सं०६-पृ०३४

(प्रो० श्रीरामचरण महेन्द्रजी, एम०ए०) सं०१०-पृ०९

(वैद्य श्रीमोहनलालजी गुप्त)...... सं०५-पृ०२०

(प्रो० श्रीभीमचन्द्रजी चटर्जी) सं०५-पृ०११

विषय-सूची सं०१२-पृ०४७

सं०२-पु०४७, सं०३-पु०४७, सं०४-पु०४६, सं०५-पु०४७, सं०६-

पृ०४५, सं०७-पृ०४७, सं०८-पृ०४५, सं०९-पृ०४७, सं०१०-पृ०४७,

(श्रीसलिलजी पाण्डेय) सं०५-पृ०१८

६३- परिवारका स्वरूप (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज,

५८- नाम-स्मरण (श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज गोंदवलेकर) सं०८-पृ०८

६०- प्रेममें प्रसन्नता (पं० श्रीचन्द्रभालजी ओझा) सं०४-पृ०२८

४७- दृढ़ इच्छाशक्ति [बोध-कथा] (श्रीरामिकशोरजी) सं०३-पृ०२७

४९- देशका नामकरण (पण्डित श्रीजानकीनाथजी शर्मा) . सं०९-पृ०९

५१- धन और भागवत जीवन (श्रीमधुसूदनजी वाजपेयी) सं०१२-पृ०११

५३- धर्म और सम्प्रदाय (ब्रह्मचारिणी सुश्री प्रज्ञाजी) सं०११-पृ०१५

५४- धर्मरथ (श्रीभगवतदास राघवदासजी महाराज) सं०१०-पृ०३१

४८- दुर्गा-पाठ [शतसहस्रायुतलक्ष चण्डीप्रयोग]

५०- दोष कैसे दूर हों ? (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी

५५- नया दोस्त, पुराना दुश्मन [बोध-कथा]

५७- नाम-महिमा [बोध-कथा]

६१- पढ़ो, समझो और करो—

सं०११-पृ०४७, सं०१२-पृ०४३

६२- पर्यावरण-संरक्षक वटसावित्री व्रत

५६- नाम-स्मरण (समर्थ सद्गुरु श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज

५९- निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक

गोंदवलेकर) सं०२-पृ०१७, सं०३-पृ०९, सं०४-पृ०१५

५२- धन और सुख

संख्या १२] निबन्धों, कविताओं और संकलित	सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची ४९
<u> </u>	*******************************
९२- महान् महात्माके महान् कर्म [ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजसे जुड़े कुछ संस्मरण]	पर्व सं०६-पृ०४३, भाद्रपदमासके व्रत-पर्व सं०७-पृ० ४५, आश्विनमासके व्रत-पर्व सं०८-पृ०४२, आश्विनमासके व्रत-पर्व सं० ९-पृ० ४५,
(श्रीलादूसिंहजी राजपुरोहित) सं०२-पृ०३७	कार्तिकमासके व्रत-पर्व सं०१०-पृ०४०, मार्गशीर्षमासके व्रत-पर्व सं०११-
९३– महापुरुषोंके प्रति उद्दण्डताका दुष्परिणाम	पृ०४४, पौषमासके व्रत-पर्व स०११-पृ०४५, माघमासके व्रत-पर्व
(२२ नहापुरवाका प्रात उद्देश्याका युजारणान [बोध-कथा] सं०१२-पृ०३०	सं०१२-पृ०४०, फाल्गुनमासके व्रत-पर्व सं०१२-पृ०४१
१४- महामारी और हमारी स्वास्थ्य-रक्षक सेना	स्वर्रर-वृष्ठर, कार्त्युगनासका प्रतानक्य सवर्रर-वृष्टर १२१- शंख और घंटा-ध्वनिसे रोगोंका नाश
९०- महानारा जार हुनारा स्वास्थ्य-रक्षक सभा (श्रीहनुमानप्रसादजी गोयल) सं०७-पृ०२६	(श्रीयमुनाप्रसादजी) सं०४-पृ०३९
(त्राहनुमानप्रसादजा पायरा)	(त्रायमुनाप्रसादजा)स००-५०३८ १२२- शरणागतिका यथार्थ स्वरूप (नित्यलीलालीन श्रद्धेय
९५- महामारास मुक्त हामका सटाक उपाय (रावस्याम खनका) सण्ट-४००९ ९६- महाराज विश्वामित्र—राजर्षिसे ब्रह्मर्षि	१११- शरणागातका ययाय स्यरूप (भाषणालालान श्रृद्धप भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)सं०५-पृ०१२
९६- महाराजा परियामित्र—राजापस ब्रह्माप (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा) सं०६-पृ०२७	भारता त्राहनुमानप्रसादता पादार)स०५-५०१२ १२३- शुद्धिका अर्थ [स्वामी श्रीजगदेवानन्दजी]सं०६-५०३९
(आयाय त्रांगायन्दरामणा रामा) सण्द-पृण्रेज ९७- मान और विवेक (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीदयानन्द	१२४- श्राद्ध-नक्या, क्यों, कैसे ?
राज भाग आरापपक (ब्रह्मलान ब्रह्मच स्थामा ब्राद्यानन्द गिरिजी महाराज) सं०७-पृ०८	
ागरेजा महाराज)	(श्रीहितसुकृतलालजी गोस्वामी)सं०९-पृ०२०
९८- मानप-जापनम सुख जार दु:ख (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) सं०७-पृ०३८	१२५- श्राद्धसे जगत्की तृप्ति सं०९-पृ०२४ १२६- श्रावणमास और उसके व्रत-पर्वोत्सव
(श्रक्षलान श्रद्धव स्वामा श्राशरणानन्दजा महाराज) स०७-५०३८ ९९- मानस-पूजा (सुश्री डॉ० सुनीताजी शास्त्री) सं०८-पृ०२३	१२६- श्रीवंगा-माहात्म्यसं०६-पृ०२३
१९० – मानस–पूजा (सुत्रा डा॰ सुनाताजा शास्त्रा) स०८–५०२३ १०० – मॉरीशस और ब्रिटेनमें हिन्दू संस्कृति	१२८– श्रीगीनमाशस्य स०६–५०१३ १२८– श्रीगीताजयन्ती और गीताकी महिमा
१००- माराशस आराष्ट्रटनमाहन्दू संस्कृति (श्रीबिन्धाप्रसादजी द्विवेदी) सं०६-पृ०२०	१२८- त्रागाताजयन्ता आरं गाताका माहमा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०१२-पृ०७
(त्रााबन्यात्रसाद्भादजााद्वयदा)	(ब्रह्मलान परम श्रद्धप श्राजयदयालजा नायन्दका) स०१२-५०७ १२९- श्रीनारदजीका अभिमान-भंग [बोधकथा] सं०४-५०२४
१७१- यह ता बड़ा हा जच्छा बात ह (श्रीसीतारामजी गुप्ता) सं०५-पृ०२७	१३०- श्रीभगवन्नाम-जपको शुभ सूचना सं०१०-पृ०४१
१०२- यह सच्चा या वह सच्चा ? (श्रीलालजी) सं०४-पृ०३१	१३१ – श्रीभगवन्नाम–जपके लिये विनीत प्रार्थना सं०१०–५०४४
१०२- यह सच्या या पह सच्या ? (त्रालाला) स००-५०३२ १०३- यज्ञोपवीत (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी	१३२- श्रीमद्भगवनाम-अपका तथा विनात प्रायमा स०१०-५००० १३२- श्रीमद्भगवद्गीताका कर्मयोग
रण्ड- यज्ञायपात (श्रक्षलान परम श्रद्धप श्राजपदपालजा गोयन्दका) सं०७-पृ०७	१३२- त्रामद्भापप्राताका कमयान (श्रीदोनानाथजो झुनझुनवाला) सं०१२-पृ०२४
शवन्यका)स०७-४०७ १०४– यात्री (श्रीरामचाकरजी)सं०२–पृ०२४	(त्रादानानायजा जुनजुनपाला)स०१२-५०२० १३३- श्रीराधा-कृष्ण-महारास-लीलाको साक्षी 'शरत्पूर्णिमा'
१०५- योगवासिष्ठमें बोधके चार मार्ग (श्रीजयनारायणजी त्रिपाठी) सं०२-पृ०२९	१३३- त्राराया-कृष्ण-महारास-लालाका साक्षा शरत्यूणमा (श्रीअर्जुनलालजी बन्सल) सं०१०-पृ०२०
१०६- रामऔरनाम सं०७-पृ०२०	(श्राञ्जापालाजा बन्सला)
१०७- राग-द्वेष (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज,	प्रसादजी गुप्त, सम्पादक 'योगवाणी') सं०१०-पृ०२३
अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ) सं०७-पृ०२४	१३५- श्रीराम-नामको महिमा सं०१४-पृ०३९
१०८- 'लला फिर आइयो खेलन होरो' (श्रीअर्जुनलालजी	१३६- श्रीरामचरितमानसमें रावण-प्रबोधके प्रसंग (पद्मश्री
बन्सल) सं०३-पृ०२३	प्रो० श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र, पूर्व कुलपति—
१०९- लक्ष्मीका वास कहाँ है ? सं०७-पृ०३९	न्नाण त्राजानराज राजानुत्रा ानत्र, पूर्व कुरावारा— सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी) सं०११-पृ०२६
११० – वर्तमाना यास याहा ह <i>ै :</i> सण्ड-पृण्यत्र ११० – वर्तमान युगमें ज्योतिषका महत्त्व	१३७- श्रीरामचिरतमानसमें श्रीभरतजीकी अनन्त महिमा
(पं० श्रीसंजय शिवशंकरजी दवे, ज्योतिषाचार्य) सं०३-पृ०२९	(साकेतवासी श्रद्धेय श्रीकृपाशंकरजी 'रामायणी')सं०११-पृ०९
१११- वाणीका सदुपयोग करें ! (नित्यलीलालीन श्रद्धेय	१३८- श्रेष्ठतमका आश्रय ही श्रेयस्करसं०२-पृ०३८
भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सं०६-पृ०१६	१३९ – संकल्प-शुद्धिकी अनिवार्यता
११२- विघ्नहर्ता गणपति गणेश [एक सांस्कृतिक रेखांकन]	(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) सं०८-पृ०३९
(डॉ० श्रीअजितकुमारसिंहजी, आई०पी०एस०) सं०११-पृ०२१	१४०- संकीर्तनकी महिमासं०६-पृ०३३
११३- विज्ञान एवं अध्यात्ममें समन्वय अति	१४९ – संकीर्तनसे रोगमुक्ति
अावश्यक [प्रेरक प्रसंग] (डॉ० श्रीविश्वामित्रजी) सं०६-पृ०२३	(वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी)सं०६-पृ०३२
११४- विज्ञानकी कसौटीपर गोदुग्ध और गोघृत [गो-चिन्तन]	१४२- संतमतमें ईश्वरकी सत्ता और महत्ता
(श्रीबरजोरसिंहजी) सं०१०-पृ०३६	्रवामी श्रीअच्युतानन्दजी महाराज) सं०२-पृ०११
११५- विलक्षण क्षमा [प्रेरक-प्रसंग] सं०१२-पृ०३४	१४३- संत-वचनामृत—सं०२-पृ०३९, सं०३-पृ०३७, सं०४-पृ०२७, सं० ७,
११६- विवेक, विश्वास और प्रेम	पृष्ठ ४०, सं०१२-पृ०२६
(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) सं०१२-पृ०३५	वृष्ठ ४८, सप्रस-वृष्टस्य (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके
११७- विश्नोई सम्प्रदायके जाम्भाणी साहित्यमें प्राप्त प्रेरक	(भृत्यायाक गालाकवासा सत्ता यूच्य श्रागणशत्तासामा मकनालाक उपदेशपरक पत्रोंसे)
बोधकथाएँ (श्रीविनोद जम्भदासजी कड्वासरा) सं०३-पृ०३२	४४४- संत-स्मरण (परमपूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके
११८- विश्वासी भक्त (श्रीयुत पं० श्रीनाथजी दुबे) सं०१२-पृ०२८	गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार) सं०२-पृ०१८
११९- वैवाहिक जीवनके प्रारम्भिक पल (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वर	१४५ - संत स्वामी कार्षणि हरिनामदासजीको अद्भुत गोभक्ति
चैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ) सं०५-पृ०३१	्रिष्य- सत्त स्थामा कार्ण्या हारनामदासजाका अद्भुत नामाक [गो-चिन्तन] (कार्ष्यिग डॉ० श्रीराधेश्यामजी अग्रवाल)सं०८-पृ०३९
१२०- व्रतोत्सव-पर्व—	[गा-ाचन्तर्ग] (कार्ष्ण डा० त्रारावश्यामणा अग्रवाल)स०८-पृण्डर १४६- संतोंके लक्षण और सन्त-समागमकी महिमा
रेर०- प्रतात्सव-पव— चैत्रमासके व्रत-पर्व सं०२-पृ०४३, वैशाखमासके व्रत-पर्व सं०३-	(श्रीसुभाषचन्द्रजी बग्गा)सं०२-पृ०३२
चत्रमासक व्रत-पव स०२–पृ०४३, वशाखमासक व्रत-पव स०३– सं०४३, ज्येष्टमासके व्रत-पर्व सं०५–पृ०४५, आषाढ्मासके व्रत-	(त्रासुभाषचन्द्रजा बग्गा)स०२–५०३२ १४७– संसारकी सुखमयता (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी
त्तर्वर, र्यन्यनात्त्रक प्रतान्ययं त्रप्यन्त्रुर्वेष, आषाद्मासक प्रतन	८००- सत्तारका सुखनमता (।नत्यतातातान श्रद्धय माइगा

<u> </u>	<u>*************************************</u>
श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)सं०७-पृ०१२	पृ०१९, शरीर और संसारको अस्थिर मानो सं०४–पृ०१७,
१४८ – सकारात्मकता और नकारात्मकता (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वर–	भगवत्स्मरणकी महिमा सं०५–पृ०१६, गतिशील संसार सं०६–पृ०२१,
चैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ) सं०२-पृ०२७	'बार-बार नहिं पाइये, मनुष-जनमकी मौज' सं०७-पृ०१६, संसारके वियोगमें
१४९- 'सतसंगति महिमा नहिं गोई'	सुख–शान्ति सं०८–पृ०१६, शरीरसे अलगावका अनुभव सं०९–पृ०१७,
(स्वामी श्रीअच्युतानन्दजी महाराज)सं०६-पृ०१४	अनुभूतिमें बाधा—सुखलोलुपता सं०१०-पृ०१८, सर्वोपरि साधन—सत्संग
१५० – सनत्कुमारकथित श्रीकालभैरवाष्टकम्सं०१२ – पृ०२३	सं०११-पृ०१७, मुक्ति स्वतः हो रही है (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी
१५१ – सन्तोषामृत पिया करें (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र) सं०८ – पृ०१३	श्रीरामसुखदासजी महाराज) सं०१२-पृ०१४
१५२- सबमें भगवान् (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी	१६४- संत-चरित—
श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)सं०१२-पृ०१०	(क) अद्भुत सन्त शिवकोटि
१५३- सम्पत्तिके सब साथी, विपत्तिका कोई नहीं सं०८-पृ०१५	(पं० श्रीवीरभद्रजी शर्मा तैलंग) सं०८-पृ०३३
१५४- समस्या और समाधान (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी	(ख) आत्मज्ञानी महात्मा महर्षि रमण

कल्याण

भाग ९४

(श्रीरामलालजी श्रीवास्तव)......सं०५-पृ०३४

(पं० श्रीशिवप्रसादजी शर्मा) सं०४-पृ०३६

(स्वामी श्रीसर्वदानन्दजी महाराज, दर्शनरत्न)सं०३-पृ०४२

(श्रीरतिभाईजी पुरोहित) सं०१०-पृ०३३

(श्रीरामलालजी श्रीवास्तव) सं०७-पृ०३५

(श्रीअम्बिकेश्वरपतिजी त्रिपाठी) सं०११-पृ०३६

(पद्मभूषण आचार्य श्रीबलदेवजी उपाध्याय) सं०९-पृ०३६

(झ) संत श्रीमुण्डिया स्वामी (श्रीरितभाईजी पुरोहित) सं०६-पृ०३७

(मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामिकंकरजी उपाध्याय) सं०७-पृ०१३

(पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) सं०५-पृ०१३

५- भज मन रामचरन सुखदाई सं०९-पृ०३१

६- मनमें हैं, मनमोहन (श्रीमती करुणाजी मिश्रा) सं०८-पृ०१९

१०- 'भगवान् श्रीसूर्यके स्वरूपका ध्यान' सं०१२-पृ०३

११– मदन–दहन सं०२–पृ०३ १२- श्रीजगन्नाथाष्टकम् सं०६-पृ०१०

१३- श्रीमातंगी-ध्यान सं०३-पृ०३ १४- 'सेइये सनेहसों बिचित्र चित्रकूट सो'..... सं०७-पृ०३४

(च) भक्तकवि श्रीकृष्णदयार्णवजी सं०१२-पृ०३३

(ज) श्रीरामभक्त पण्डितराज उमापतिजी त्रिपाठी 'वसिष्ठ'

(ञ) सिद्ध हनुमद्भक्त पं० श्रीरामगुलाम द्विवेदी

(ग) आबाल ब्रह्मचारी बालागुरु षडानन्दजी महाराज

(घ) उदासीनाचार्य श्रीश्रीचन्द्रजी महाराज

(ङ) गुजरातके सन्त श्रीडायाराम बाबा

(छ) महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्र

श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम० ए०, पी०-एच० डी०)सं०१२-पृ०९ १६२ - स्वाभाविक कर्मसे भगवत्प्राप्ति १६५ - हनुमान्जीद्वारा रावणकी चिकित्सा करनेका यत्न (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) .. सं०५-पृ०७ १६३- साधकोंके प्रति— १६६ - हृदयकी सरलतासे प्रभुका साक्षात्कार स्वरूपमें ही स्थित रहें सं०२-पृ०१९, अहंकार कैसे मिटे? सं०३-

महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ)...... सं०८-पृ०३५

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) सं०९-पृ०३९

सं०५-पृ०४३, सं०६-पृ०४१, सं०७-पृ०४३, सं०८-पृ०४०, सं०९-

अखिल भारतीय धर्मसंघ) सं०९-पृ०४० १५८- सीमापर चीनी-आक्रमणके परिप्रेक्ष्यमें— सं०८-पृ०१२

(श्रद्धेय सन्त श्रीमोटाजी, नाडियाद-गुजरातवाले) . सं०४-पृ०१०

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)सं०१०-पृ०३५

(प्रो० श्रीकृष्णबिहारीजी पाण्डेय) सं०८-पृ०३४

(अवधबासी श्रीसीतारामजी 'भूप') सं०९-पृ०२८

२- 'जोड़ीं कितनी चीजें!'(श्रीशरदजी अग्रवाल) सं०३-पृ०१०

४- पांचजन्य लो हाथमें (पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणजी शास्त्री 'राम)

३- गजानन-स्तवन सं०११-पृ०३

४- 'जानकी-जीवनकी बलि जैहौं'.....सं०५-पृ०३

५- पार्वतीजीकी शिवाराधना..... सं० ७-पृ० ३ ६- प्रभुका प्रत्येक विधान मंगलमय सं० ९, पृ० १२

१५६- साधनोपयोगी पत्र—सं०२-पृ०४४, सं०३-पृ०४४, सं०४-पृ०४३,

पु०४३, सं०१०-पु०३८, सं०११-पु०४२, सं०१२-पु०३८

१५७- साक्षीभाव (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज,

१६१ - स्वच्छ वस्त्रोंका आध्यात्मिक प्रभाव (आचार्य डॉ॰

१- जब-जब उन्हें पुकारा, दौड़े आये हैं भगवान्

३- झाँकी देखिय अवधपुरी की

संख्या १२, पृ०-३६

१६०- सुखभोगकी इच्छाओंके नाशका उपाय

१५५- सही प्रवृत्तिसे सहज निवृत्ति

१५९-सुखका उपाय

७- वन्दन राधा-श्याम (श्रीदेवीचरणजी पाण्डेय 'चरण') सं०२-पृ०१० ८- विनय-प्रार्थना (डॉ० श्रीसतीशजी चतुर्वेदी 'शाकुन्तल') सं०४-पृ०१४ ९- सरस्वती-प्रार्थना (श्रीराामलखनसिंहजी ' मयंक') सं००२-पृ०२०

पद्य-संकलन

संकलित १- अतुलितबलधाम श्रीहनुमान्जी सं०९-पृ०३ ८- भगवती सरस्वतीका ध्यान सं०४-पृ०३ २- 'उन श्रीराधापद-कमलोंमें नमस्कार है बारंबार' सं०८-पृ०३ ९- भगवान् श्रीरामद्वारा रामेश्वर-पूजन सं० ६-पृ० ३

श्रीमद्भगवद्गीताकी दो प्रमुख टीकाएँ

गीता-तत्त्व-विवेचनी— भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्यवाणीसे निःसृत सर्वशास्त्रमयी गीताकी विश्वमान्य महत्ताको दृष्टिमें रखकर इस अमर संदेशको जन-जनतक पहुँचानेके उद्देश्यसे गीताप्रेसके आदि संस्थापक परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा प्रणीत गीताकी एक दिव्य टीका। इसमें २५१५ प्रश्न और उनके उत्तरके रूपमें प्रश्नोत्तर शैलीमें गीताके श्लोकोंकी विस्तृत व्याख्याके साथ अनेक गूढ़ रहस्योंका सरल, सुबोध भाषामें सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। इसके स्वाध्यायसे सामान्य-से-सामान्य व्यक्ति भी गीताके रहस्योंको आसानीसे हृदयंगम कर अपने जीवनको धन्य कर सकता है।

गीता-तत्त्व-विवेचनी					भन्न संस्करण		
कोड	पुस्तक-		मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-ना	ਸ ਸ	मूल्य ₹
3	गीता-तत्त्व-विवेचनी-	–हिन्दी–टीका, सजिल	त्द,	1112	गीता-तत्त्व-विवेचनी—	कन्नड्–अनुवाद,	
_	सचित्र, साधारण संस		140		सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार	l	200
2	गीता-तत्त्व-विवेचनी- सजिल्द, सचित्र, ग्रन	*	170	1172	गीता-तत्त्व-विवेचनी—	तेलुगु-अनुवाद,	
1	गीता-तत्त्व-विवेचनी-		1,0		सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार	L	200
	सचित्र, बृहदाकार।	,	300	1313	गीता-तत्त्व-विवेचनी—	गुजराती-अनुवाद,	
1118	गीता-तत्त्व-विवेचनी-	•			सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।		200
	सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाक		140	1304	गीता-तत्त्व-विवेचनी—	मराठी-अनुवाद,	
800	गीता-तत्त्व-विवेचनी- सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाक		200		सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार	1	160
1100	गीता-तत्त्व-विवेचनी-		200	457	गीता-तत्त्व-विवेचनी—ः	भँग्रेजी-अनुवाद,	
1100	सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाका	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	180		सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार		200

गीता-साधक-संजीवनी—ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजने गीतोक्त जीवनकी प्रयोगशालासे दीर्घकालीन अनुसन्धानद्वारा अनन्त रत्नोंका प्रकाश इस टीकामें उतार कर लोककल्याणार्थ प्रस्तुत किया है, जिससे आत्मकल्याणकामी साधक साधनाके चरमोत्कर्षको आसानीसे प्राप्त कर आत्मलाभ कर सकें। इस टीकामें स्वामीजीकी व्याख्या विद्वत्ता-प्रदर्शनकी न होकर सहज करुणासे साधकोंके लिये कल्याणकारी है। विविध आकार-प्रकार, भाषा, आकर्षक साज-सज्जामें उपलब्ध यह टीका सद्गुरुकी तरह सच्ची मार्गदर्शिका है।

	गीता-साधक-संज	भिन्न संस्करण			
कोड	पुस्तक-नाम मृ	्ल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम म	गूल्य ₹
6	गीता-साधक-संजीवनी (परिशिष्टसहित)-	_	1121	गीता-साधक-संजीवनी — ओड़िआ-अनुवाद	,
	हिन्दी-टीका, सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।	300		सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।	320
5	गीता-साधक-संजीवनी (परिशिष्टसहित)-	_	1369	गीता–साधक–संजीवनी—कन्नड़–अनुवाद	
	हिन्दी-टीका, सजिल्द, सचित्र, बृहदाकार।	500	7	(दो खण्डोंमें), सजिल्द, सचित्र, ग्रंथाकार।	360
7	गीता-साधक-संजीवनी—मराठी-अनुवाद,			गीता-साधक-संजीवनी—तमिल-अनुवाद,	
	सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।	300	1		
467	गीता-साधक-संजीवनी—गुजराती-		1427	(दो खण्डोंमें) सजिल्द, सचित्र, ग्रंथाकार।	360
	अनुवाद, सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।	300	1080	गीता-साधक-संजीवनी (परिशिष्टसहित)	_
763	गीता-साधक-संजीवनी—बँगला-अनुवाद,		1081	अंग्रेजी-अनुवाद (दो खण्डोंमें), सजिल्द,	
	सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।	320		सचित्र, पुस्तकाकार।	280



LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

LICENCE No. WPP/GR-03/2020-2022

जनवरी सन् २०२१ ('कल्याण'वर्ष ९५)-का विशेषाङ्क—'श्रीगणेशपुराणाङ्क' [श्लोकाङ्कसहित सम्पूर्ण हिन्दी भाषानुवाद]

'श्रीगणेशपुराण' गणपति-उपासनाका प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसके उपासना खण्डमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, पार्वती, स्कन्द, चन्द्रमा, मंगलग्रह, कश्यप, परशुराम, शेषनाग, कामदेव, महर्षि व्यास, भ्रूशुण्डी, मुद्गल, राजा कर्दम, नल, चन्द्रांगद, शूरसेन, वरेण्य, दक्ष, बल्लाल आदि देवताओं, ऋषि-मुनियों, राजाओं और गणेश-भक्तोंद्वारा की गयी उनकी उपासनाकी कथाएँ तथा क्रीडाखण्डमें भगवान् गणेशकी बाल-लीलाओंके साथ उनके गजानन आदि अवतारों तथा अनेक असुरोंके उद्धारकी कथाएँ वर्णित हैं। इस प्रकार यह सम्पूर्ण पुराण रोचक एवं भिक्तपरक लीलाकथाओंसे परिपूर्ण है। यह पुराण शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर और गाणपत्य—सभीके लिये पठनीय है।

इस गणेशपुराणका श्रवण करनेवाला सभी आपित्तयोंसे मुक्त होकर अनेक भोगोंका उपभोग करके, पुत्र-पौत्रादिसे सम्पन्न होकर गणेशजीकी कृपासे उत्तम मुक्ति प्राप्त करता है। सैकड़ों करोड़ कल्प बीत जानेपर भी उसका [इस संसारमें] पुनरागमन नहीं होता। [गणेशपु॰ १।९२।५७—५८^१/२]

इस विशेषाङ्कमें पिछले वर्षोंकी अपेक्षा लगभग 150 पृष्ठ अधिक होंगे। विशेष बात यह है कि पृष्ठ-संख्यामें वृद्धि होते हुए भी कल्याणके मूल्यमें वृद्धि नहीं की गयी।

वार्षिक-शुल्क पूर्ववत्—₹ 250

पंचवर्षीय-शुल्क पूर्ववत्—₹ 1250

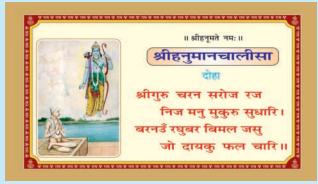
वार्षिक सदस्यता-शुल्क ₹ 250 के अतिरिक्त ₹ 200 देनेपर मासिक अङ्क्रोंको भी रिजस्टर्ड डाकसे भेजनेकी व्यवस्था की गयी है। इस सुविधाका लाभ उठाना चाहिये।

इंटरनेटसे सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु gitapress.org पर Kalyan option को click करें। व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५

नित्य पठनीय सचित्र चालीसा



श्रीदुर्गाचालीसा (कोड 2120) सचित्र, रंगीन, पुस्तकाकार, बेड़िआ, मोटा टाइप, मूल्य ₹ 15,



श्रीहनुमानचालीसा (कोड 2121) सचित्र, रंगीन, पुस्तकाकार, बेड़िआ, मोटा टाइप, मूल्य ₹ 15,

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें। gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर—273005 book.gitapress.org/gitapressbookshop.in

कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ सकते हैं।